रहबर से अपनी राह जुदा

संतराम, जाति और लिंग

चारु गुप्ता

साभार : मधु चड्ढा, संतराम बीए की प्रपौत्री

भूमिका : शताब्दी एक, शब्द अनेक

पंजाब के संतराम बीए (1887-1988, 101 साल का जीवनकाल) हिंदी के विख्यात लेखक, परिवर्तनकामी, जातिप्रथा के कड़े आलोचक और समाज-सुधारक थे। उन्होंने सौ से ज़्यादा पुस्तकें और आत्मकथा *मेरे जीवन के अनुभव* समेत अनेक पुस्तक-पुस्तिकाएँ लिखीं और प्रकाशित कीं।[1] वे काफ़ी समय तक आर्य समाज के सदस्य रहे और 1922 में उन्होंने जात-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना की। इतने महत्त्वपूर्ण बौद्धिक और सांगठनिक योगदान के बावजूद वे अकादमिक शोध और विमर्श में हाशिये पर रहे हैं। संतराम की ख्याति का एक मुख्य कारण यह है कि उन्होंने डॉ. आम्बेडकर को जात-पाँत तोड़क मण्डल के वार्षिक सम्मेलन में मुख्य वक्ता के रूप में निमंत्रित किया जिसे संगठन के भीतर हुए विरोध के कारण अंततः स्थगित करना पड़ा। आम्बेडकर के कथित भाषण का मजमून उनकी प्रसिद्ध कृति *ऐनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट* (*जाति का उन्मूलन*) के रूप में सामने आया।[2]

संतराम के जीवन और लेखन के बारीक विश्लेषण की ज़रूरत है। कई कारणों से उन्हें उनके अपने आधारों पर ही जाँचना-परखना चाहिए। शूद्र जाति के संतराम ने अन्य मुखर जाति विरोधी नेताओं, जैसे आम्बेडकर और पेरियार से अलग हट कर जातिप्रथा की कटु आलोचना करते हुए भी

---

[1] संतराम बीए (1963). पुनर्प्रकाशन, 1974. मेरे सभी संदर्भ 1963 में प्रकाशित संस्करण से हैं.

[2] लाहौर के जात-पाँत तोड़क मण्डल के वार्षिक सम्मेलन के लिए डॉ. बी. आर. आम्बेडकर द्वारा तैयार भाषण— *ऐनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट*, जिसे स्वागत समिति द्वारा सम्मेलन को रद्द करने के कारण वितरित नहीं किया गया क्योंकि कमेटी का मानना था कि भाषण में व्यक्त विचार सम्मेलन में असहनीय होंगे, 15 मई, 1936, प्रस्तावना : I-VIII.

जाति-सुधार के प्रश्न पर हिंदू-विमर्श के दायरे में रह कर विचार किया। उनके इस उद्यम की सीमाएँ भी थीं, और उसमें सम्भावनाएँ भी निहित थीं। संतराम का जीवन केवल इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उसके केंद्र में जाति का दंश था, बल्कि वह इसलिए ज़्यादा मानीख़ेज़ है कि उनके जीवन में कई परतें थीं। वे गाँधी और आम्बेडकर, बोर्ज़्वा और वंचित, आर्य समाज और आदधर्म के बीच एक पुल बनाने की कोशिश करते हुए दिखते हैं। इस दौरान उनका हिंदू धर्म के साथ राग-विराग और प्रेम-तिरस्कार का संबंध चलता रहता है। संतराम ने ऐसी अनजानी-अनराही जगह पर खड़े हो कर ही अपनी जाति-विरोधी मीमांसा की। अपनी इस त्रिशंकु स्थिति में ही संतराम की महत्ता निहित है। संतराम का लेखन पढ़ते हुए हम जाति की कई गलियों और पगडण्डियों से गुज़रते हैं— आड़े-तिरछे, निर्जन-दुर्गम रास्तों से जिन्हें हम किसी स्पष्ट, निश्चित साँचे में नहीं ढाल सकते। यद्यपि संतराम कई परिवर्तनकामी और क्रांतिकारी जाति-विरोधी नेताओं के बीच कभी-कभी थके-पुराने भी नज़र आ सकते हैं, लेकिन उनकी यात्रा बेहद प्रासंगिक है। वह एक ऐसी धरोहर, एक ऐसी स्मृति है जिससे शोषित उद्वेलित होते हैं और साथ ही संतराम की सीमाएँ हमें बेचैन भी करती चलती हैं।

1960 के दशक में जब संतराम ने अपनी आत्मकथा लिखी, उस समय तक उनकी ज़िंदगी विभिन्न अवस्थाओं से गुज़र कर एक आकार ले चुकी थी। आत्मकथा में उन्होंने अपने जीवन को बड़ी स्पष्टता से चित्रित किया है। उनकी विविध और बहुरंगी कृति *मेरे जीवन के अनुभव* जाति को चुनौती देने वाला एक प्रकार का प्रचारात्मक साहित्य भी कहा जा सकता है। आत्मकथा के कई प्रसंग एक बृहत्तर आलेख के साथ संगति बैठाते हैं क्योंकि संतराम का जीवन उनकी शूद्र स्थिति, आर्य समाज, आम्बेडकर और जात-पाँत तोड़क मण्डल से संचालित था। संतराम अपनी आत्मकथा अपनी सामान्यता और मामूलीपन पर ज़ोर देकर शुरू करते हैं और अपनी पहचान के लिए जाति को केंद्रीय बताते हैं :

> मेरी धारणा थी कि अपनी आत्मकथा छपाना एक प्रकार से अपना बड़प्पन दिखाना है। मैं ऐसे बड़प्पन के दिखलावे से बचना ही हितकर समझता था। दूसरी बात यह थी कि कथित बड़े लोगों के जीवन-वृत्तांतों को तो लोग पढ़ते और उनसे लाभ उठाते हैं, मैं न तो कोई विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान हूँ और न कोई क्रांतिकारी राजनीतिक नेता। मैंने तो सारी आयु जात-पाँत के विरुद्ध संघर्ष और हिंदी की सेवा में ही लगा दी है।... परंतु मेरे मित्रों का कहना था कि जात-पाँत भारत का एक महा-भयंकर शत्रु है।... आप की आत्मकथा एक प्रकार से आधुनिक भारत में जाति-भेद-निवारण और पंजाब में हिंदी-प्रचार का ही इतिहास होगा।... बस उनके आग्रह का पालन करने के लिए ही मैंने यह पुस्तक लिखी है।... जब कोई मनुष्य जात-पाँत को मिटाने जैसा कोई सामाजिक सुधार का काम करता है, तो परायों का तो कहना ही क्या, स्वयं उसके अपने बंधु-बांधव भी उसका तिरस्कार एवं विरोध करने लगते हैं! उसके फ़ोटो समाचार-पत्रों में नहीं छपते। उसका कोई स्मारक नहीं बनाया जाता। उसे आयु भर जीते-जी चिता में जलना पड़ता है।[3]

एम.एस.एस. पांडियन का विश्लेषण है कि कई दलित आलेख 'अपने वर्णित जीवन की स्वचेतन सामान्यता को रेखांकित और संवादित करते हैं।'[4] फ्रांसीसी दार्शनिक जॉक रांसिएर का कहना है कि 'सामान्य जीवन की स्वीकृति कविता के केवल एक सम्भावित विषय के रूप में नहीं, बल्कि कविता के एक बेहद उत्कृष्ट विषय के रूप में होनी चाहिए।'[5] संतराम की आत्मकथा में सामान्य जीवन का ऐसा ही साँचा है जिसका मुख्य फ़ोकस जाति पर है।

संतराम के जीवन और लेखन के ज़रिये इस लेख में उत्तर भारत में बीसवीं सदी की शुरुआत में जाति के सामाजिक इतिहास के अध्ययन और पुनरवलोकन की कोशिश की गयी है। इसी के साथ

---

[3] संतराम (1963), वही, प्राक्कथन : 3-6.
[4] एम.एस.एस. पाण्डियन (2008) : 34-40.
[5] जॉक रांसिएर (2011) : 175.

संतराम ने अपने जीवन और जाति-विरोधी विचारों के बारे में दूसरों को जो बताया-सुनाया, उसकी जाँच-पड़ताल भी की गयी है। जाति के बारे में संतराम की क्रिया-प्रतिक्रिया से उनके व्यक्तित्व, परिवार और जाति-विरोधी समाज सुधार की झलक मिलती है। साथ ही उनके व्यक्तिगत, साहित्यिक और सामाजिक जीवन के आपसी ताने-बाने भी ज़ाहिर होते हैं। उनकी आत्मकथा में रोटी-बेटी के इर्द-गिर्द जाति के रोज़ाना के टंटों और गाँधीवादी और आर्य समाजी राजनीति के संकुचन का पता चलता है। वे सनातनी हिंदू और दकियानूसी प्रवृत्ति पर गम्भीर हमला करते हैं। संतराम का स्याह-सफ़ेद के चश्मे से मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। उनमें जाति के 'स्व', समाज सुधार, हिंदू धर्म और राष्ट्र का विरोधाभासी मिश्रण है। वे निजी और सार्वजनिक, व्यक्तिगत और राजनीतिक, स्व और राष्ट्र, व्यक्ति और समुदाय, आंतरिक और सामाजिक के बीच आसानी से विचरण करते हैं। इस लेख में यह तर्क दिया गया है कि संतराम के विचारों को महिमामण्डन या मूर्तिभंजन के दायरों में सीमित नहीं किया जा सकता, बल्कि वह इस तथ्य का एक सटीक उदाहरण है कि हमारे कुछ सुधारक औपनिवेशिक भारत के उथल-पुथल भरे परिवर्तनों के बीच किस प्रकार की परस्पर विरोधाभासी धाराओं में फँसे थे। संतराम जाति के बारे में अनेक अर्थ और विविध आग्रह प्रस्तुत करते थे जिसमें एक ओर वे अंतर्जातीय विवाह के प्रबल समर्थक थे, तो दूसरी ओर उनमें जाति-सुधार और सम्मान की अनेकार्थी और अस्पष्ट भाषा भी निहित थी। इसी के साथ संतराम के लेखन में आधुनिकता और परम्परा का परस्पर-विरोधी समागम दिखाई देता है जहाँ वे जाति पर हमला करने के लिए कभी तार्किकता का इस्तेमाल करते हैं तो कभी धार्मिकता का। उनके जीवन का राजनीतिक स्वरूप दुहैरी प्रवृत्तियों और विचारों के पंचमेल से तय होता है। कहीं-कहीं उनके जीवन का यह विवरण हिंदू धर्म का एक स्वीकृत मॉडल और संदेश भी प्रतीत होता है। साथ ही उनके जीवन में जाति की एक नयी सामाजिकता का भी प्रस्ताव दिखता है जिसमें जाति प्रतिष्ठापित और रूपांतरित, दोनों स्थितियाँ धारण करती है।

यह लेख जाति को अंतरंग प्रेम-संबंध के नज़रिये से भी विश्लेषित करता है— यहाँ संतराम के अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करने और सगोत्रीय विवाहों और इस प्रकार पारम्परिक स्वीकार्यता में सेंध लगाने की कोशिशों पर भी ध्यान दिया गया है। सगोत्रीय विवाह को चुनौती दे कर संतराम ने जाति को अंतरंगता, प्रेम और विवाह के इतिहास के साथ आबद्ध किया और जाति तथा लिंग के बीच गहन और पेचीदा नाता स्थापित किया। इससे जाति के बारे में एक नया विमर्श भी विकसित हुआ जिसका प्रतिफलन जात-पाँत तोड़क मण्डल के रूप में होता हुआ दिखता है।

जीवन-इतिहास और जाति : स्व और सामूहिक पहचान

डेविड आर्नोल्ड और स्टुअर्ट ब्लैकबर्न कहते हैं कि भारत में जीवन-इतिहास समाज में स्व का निर्माण है जो एक ओर सबको समाहित करने वाली सामूहिकता और दूसरी ओर निपट व्यक्तिवादिता के बीच की परस्पर विरोधी स्थिति की तुलना में कहीं ज़्यादा जटिल और गूढ़ है।[6] हाल ही में उदय कुमार ने रेखांकित किया है कि भारत में उन्नीसवीं सदी के जीवन-विवरण निजी आंतरिकताओं की बहुत कम बात करते हैं, और उसका केंद्र बिंदु व्यक्तिगत जीवन की ख़ासियत में स्थित नहीं है। इसके बजाय, जीवन-विवरण कुछ बृहत्तर बताने का बहाना बन जाता है।[7] प्रसिद्ध इतिहासकार रिचर्ड ईटन जीवन-विवरणों की थाती के ज़रिये दक्खन की पिछली चार शताब्दियों के सामाजिक इतिहास पर रोशनी डालते हैं।[8] संतराम की जीवन कथा भी ऐसे नैतिक-राजनीतिक सरोकारों का प्रतिबिम्ब है जहाँ

---

[6] डेविड आर्नोल्ड और स्टुअर्ट ब्लैकबर्न (2004) : 1-28.

[7] उदय कुमार (2016) : 13-4.

[8] रिचर्ड एम. ईटन (2005).

जाति के मसले पर स्व निरंतर ही सामाजिक और सार्वजानिक हस्तक्षेपों के साथ संवाद करता है— इससे व्यक्तिगत जातिपरक स्मृतियों और सामूहिक जाति-इतिहास का अभिलेखागार बनता है। संतराम की आत्मकथा में आपस में गुत्थम-गुत्था होने वाली ताक़तें अपने अलग-अलग उद्देश्यों और सम्बोधनों का महत्त्व जताने का प्रयास करती हैं। संतराम के प्रशंसक इसीलिए लिखते हैं : 'उनके सत्तानवे वर्ष की जीवन-गाथा, गाथा मात्र नहीं, एक प्रकार से आधुनिक भारत में जाति-निवारण और पंजाब में हिंदी-प्रचार का इतिहास है।'[9]

आत्मकथाएँ या जीवन-विवरण वंचितों, शोषितों और दलितों के ऐतिहासिक औज़ार रहे हैं,[10] जिनमें प्राय: अपनी सांस्कृतिक पूँजी के रूप में व्यक्तिगत और सामूहिक अधिकारों की भाषा में पीड़ा, दु:ख और जातीय हिंसा की अभिव्यक्ति होती रही है।[11] हाल में लौरा ब्रुएक ने यह तर्क दिया है कि हिंदी दलित साहित्यिक हलक़ा एक 'प्रति लोकवृत्त' (काउंटर पब्लिक स्फ़ियर) है, एक अलग राजनीतिक और सौंदर्यमूलक आंदोलन;[12] और तोरल गजरावाला का मानना है कि दलित साहित्य एक ऐसी जगह है जहाँ अब यथार्थवाद बसता है।[13]

कई अन्य दलित जीवन-विवरणों के समान ही संतराम की आत्मकथा में जाति एक सर्वव्यापक फ़लक के तौर पर उभरती है क्योंकि ऐसे जीवन-वृत्तांत अपने वंचित अस्तित्व को याद करते हैं, उसे परिकल्पित और निर्मित करते हैं। उनकी आत्मकथा एक ऐसे परिदृश्य का निर्माण करती है जिसमें वर्गीय-बोध, दु:ख, प्रतिकार और स्वाधीनता की विभिन्न पटकथाएँ प्रस्तुत होती हैं। उनके द्वारा लिखित सबसे महत्त्वपूर्ण पुस्तक *हमारा समाज*[14] के साथ उनकी आत्मकथा को पढ़ते हुए हमें उनके जीवन में जाति की केंद्रीयता के साथ उस समय की संशयात्मकता का भी अंदाज़ मिलता है।

ये दोनों ही पुस्तकें कई संस्करणों में प्रकाशित हुईं और आज तक प्रकाशित हो रही हैं। पर इनका प्रकाशन आर्य समाज द्वारा नहीं बल्कि दलित प्रकाशन समूहों से हो रहा है। जाति पर संतराम की कई अन्य पुस्तकों और पुस्तिकाओं को भी दलित प्रकाशनों ने काफ़ी प्रकाशित किया है। यह उल्लेखनीय है कि एक अग्रणी हिंदी दलित लेखक सतनाम सिंह और प्रमुख दलित प्रकाशन संस्थान सम्यक प्रकाशन ने 2008 में *मेरे जीवन के अनुभव* के अंश प्रकाशित/वर्णित किये, और किताब के मुखपृष्ठ पर यह दावा किया कि वह 'दलित साहित्य की पहली आत्म-कथा' है।[15] सतनाम सिंह कहते हैं :

> दलित साहित्य के आलोचक प्राय: आज तक यह तय नहीं कर पाए हैं कि हिंदी में दलित साहित्य की पहली आत्म-कथा किसे माना जाए। जबकि आत्म-कथाओं से ही दलित साहित्य चर्चा में आया। ... संतराम बीए प्रेमचंद द्वारा सम्पादित *हंस* पत्रिका के जनवरी-फ़रवरी 1932 के आत्मकथा विशेषांक में स्व-कथन लिख चुके थे। यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि (आधुनिक काल) यह किसी भी दलित लेखक द्वारा लिखा गया प्रकाशित पहला 'स्व-कथन' है। ... जुलाई, 1955 के *आजकल* मासिक में संतराम बीए ने एक और स्वकथन लिखा। यही नहीं बाद में उनके अन्य स्व कथन अप्रैल, 1959, दिसम्बर, 1959 और सितम्बर, 1960 के अंकों में भी छपे। इन्हीं स्व कथनों को विस्तार देते हुए संतराम बीए ने 1963 में *मेरे जीवन के अनुभव* नाम से अपनी

---

[9] सुधीर विद्यार्थी (1985) : 142-3.

[10] ज्ञानेंद्र पाण्डे (2013) : 131-2.

[11] विस्तार के लिए देखें : देबजानी गांगुली (2009) : 429-42; सरह बेथ हंट (2014) : 176-208; राज कुमार (2010) : 157-256; शर्मिला रेगे (2006); मोहनदास नैमिशराय (2011).

[12] लौरा ब्रुएक (2014).

[13] तोरल जतिन गजरावाला (2013) : 3.

[14] संतराम बीए (1949). इसका एक अन्य संस्करण होशियारपुर, विश्वेश्वरन वैदिक शोध संस्थान से 1987 में प्रकाशित हुआ. बाद में इसके बहुत से संस्करण दलित प्रकाशनों से भी छपे. मेरे सभी संदर्भ 1949 के संस्करण से लिए गये हैं.

[15] सतनाम सिंह (2008) : मुखपृष्ठ.
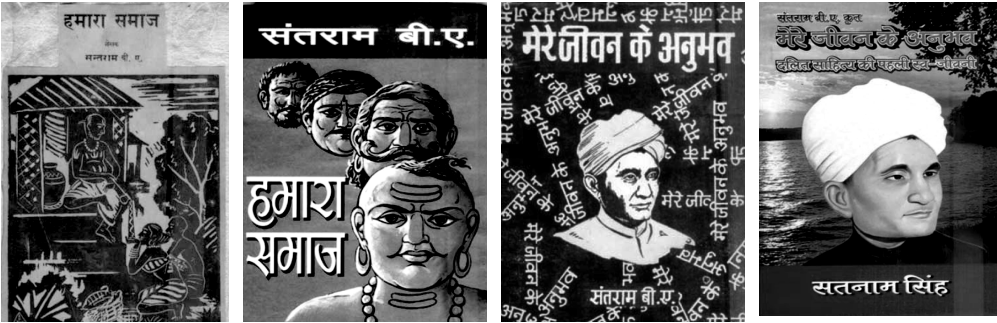
हमारा समाज के आवरण पृष्ठ, 1949 और 2007; आत्मकथा, और सतनाम सिंह की रचना जिसमें इसे पहली दलित आत्मकथा बताया गया है.

> आत्म-कथा छपवायी। इस प्रकार यह हिंदी में दलित साहित्य की पहली आत्म-कथा है। ... दलित साहित्य शास्त्र के अंतर्गत आने वाली प्रवृत्तियों के आधार पर भी हमें उन्हें हिंदी का पहला स्व-जीवनीकार मानने में कोई गुरेज़ नहीं होना चाहिए। ... क्योंकि इनमें जाति से अपमानित होने के भी अनुभव हैं तथा जाति के आधार पर उत्पीड़न से लड़ने के भी।[16]

सतनाम सिंह यह भी दावा करते हैं कि संतराम हिंदी के पहले दलित पत्रकार थे।[17] यद्यपि सतनाम सिंह के दावे की काट की जा सकती है, पर इससे संतराम की आत्मकथा का महत्त्व अवश्य उजागर होता है जो कई सामान्य और अलग, विशिष्ट स्तरों पर दलित जीवन की तर्ज़ेबयानी करती है। मार्के की बात है कि कई और दलित विचारकों, जैसे कंवल भारती और धर्मवीर, ने भी संतराम पर लेख लिखे हैं।[18] इसके अलावा विभिन्न दलित संग्रहों और ज्ञानकोशों में भी संतराम का उल्लेख मिलता है।[19] संतराम कृत *हमारा समाज* को पुन: प्रकाशित करते हुए सम्यक प्रकाशन के कर्ता-धर्ता शांति स्वरूप बौद्ध ने अपने प्रकाशकीय में लिखा :

> एक कुम्हार जाति में जन्म लेकर भी बड़े से बड़े ब्राह्मण विद्वान से टकरा जाने वाले तथा देखते ही देखते अपनी मेधा शक्ति के बल पर उन्हें परास्त कर देने वाले माननीय संतराम बीए जी वास्तव में ही हमारे समाज के गौरव रत्न हैं।[20]

सम्यक प्रकाशन नियमित रूप से संतराम का जन्म-दिन भी मनाता है।

संतराम की स्वीकृति दलित राजनीति की विविधता का सूचक है। दलितों के बीच एक विरोधी प्रवृत्ति भी रही है जिसके तहत उन्होंने दलित-लेखन का एक लम्बा साहित्यिक इतिहास क़ायम किया है— यहाँ दलितों की दावेदारी का एक व्यापक कैनवास है, साथ ही दलित-विमर्श की हदों का विस्तार भी। अपने बहुचर्चित अध्ययन में कांचा इलैया दलित-बहुजन शब्द का प्रयोग करते हैं जिसके अनुसार कई तरह के अंतर्विरोधों के बावजूद कई सांस्कृतिक और आर्थिक तथा उत्पादक ज्ञान की ऐसी समानताएँ हैं जो पिछड़ी जातियाँ और दलितों को एक कपड़े के धागों की तरह साथ-साथ बाँधती हैं।[21] इसी प्रकार दलित पैंथर्स अपनी अवधारणा का दायरा विस्तृत करते हैं और दलित शब्द को व्यापक, सामान्य और समावेशी रूप में इस्तेमाल करते हैं।[22] शायद ऐसी ही कई वजहों से संतराम को दलित-संकलनों में स्वीकृति मिली है।

---

[16] सतनाम सिंह (2008) : 6-12.

[17] वही : 107-12. 9 फ़रवरी 2016 को दिल्ली में लिए गये एक साक्षात्कार में सतनाम सिंह ने यह बात फिर दोहराई.

[18] कंवल भारती (2017). देखें, https://www.forwardpress.in/2017/07/santram-b-a-a-committed-anti-caste-warrior-hindi/; धर्मवीर (2008) : 170-89.

[19] उदाहरण के लिए, संजय पासवान और परमांशी जयदेव (2004) : 189-90. ; आर.के. क्षीरसागर (1994) : 323-4.

[20] संतराम बीए (2007) : 3. यह संस्करण सम्यक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित किया गया था.

[21] कांचा इलैया (2002) : ix.

[22] लता मुरुगकर (1991) : 237; एस. शंकर (2012) : 67-74.

पारिवारिक और सामाजिक जड़ें : जातिगत भेदभाव, आर्य समाज और हिंदी-प्रोत्साहन

संतराम पंजाब के होशियारपुर ज़िले के एक छोटे-से गाँव पुरानी बसी में 14 फ़रवरी, 1887 को जन्मे। उनके पिता रामदास गोहिल मध्य एशियाई क्षेत्रों जैसे यारकंद और लद्दाख आदि में व्यापार करते थे। उनकी माता का नाम मालिनी देवी था। संतराम सात लड़कों और एक लड़की में चौथे नम्बर पर थे।[23] यद्यपि यह परिवार आर्थिक रूप से सक्षम था, पर उसकी सामाजिक जड़ें दीन-हीन थीं। वे शिल्पकार कुम्हार जाति के थे जो जातिगत वर्गीकरण में काफ़ी नीचे थी और पंजाब में शूद्र की हैसियत रखती थी। पंजाब में मानवशास्त्रीय अध्ययन करने वाले प्रसिद्ध विद्वान डेंजिल इबेटसन के अनुसार :

> कुम्हार देश में मिट्टी के बर्तन बनाने और ईंट जलाने का काम करते हैं। ... वे गाँव के सच्चे चाकर हैं जिन्हें घरेलू उपयोग के लिए मिट्टी के सारे बर्तनों की आपूर्ति करने के एवज में पारम्परिक तौर पर मज़दूरी मिलती है। वे पंजाब की सभी जातियों में अकेले हैं जो गधे भी रखते हैं। ... वे गाँवों और शहरों में छोटे-मोटे सामान भी ढोते हैं। ... उनकी सामाजिक औक़ात काफ़ी नीची है— लोहार से भी नीचे और चमार से कोई ज़्यादा ऊपर नहीं, क्योंकि अशुद्ध जानवर गधे से उनका पैतृक नाता है— एक ऐसा जानवर जो चेचक की देवी शीतला के लिए पवित्र माना जाता है। उन्हें इसलिए अशुद्ध माना जाता हैं क्योंकि वे गंदगी ढोने और सफ़ाई करने के लिए तैयार रहते हैं।[24]

होशियारपुर डिस्ट्रिक्ट ग़ज़ेटियर में दर्ज किया गया : 'कुम्हार गधे रखते हैं, जो पालमपुर और होशियारपुर के बीच व्यापार के काफ़ी काम आते हैं।'[25] कुम्हार की शूद्र औक़ात बताने वाली कई अपमानजनक जातिगत उक्तियाँ मिलती हैं।

एक देखिए : कुम्हार कहे त: गधे प: ना चढ़े / अर्थात् दुष्ट व्यक्ति कहना नहीं मानता। यहाँ कुम्हार को दुष्ट कह कर सम्बोधित किया गया है। एक अन्य उक्ति इस प्रकार है : कुम्हार की गधी, घर-घर लदी / अर्थात् कुम्हार के गधे का पूरा गाँव प्रयोग करता है। यह कहावत बेगार की ओर भी इशारा करती है। और देखिए : ऊत गाँव में कुम्हार ही महती / अर्थात् निकृष्ट गाँव में कुम्हार ही प्रधान होता है। इससे यह भाव निकलता है कि जिस गाँव का प्रधान कोई कुम्हार बन जाए, वह गाँव नीच हो जाता है। एक अन्य कहावत में कुम्हारों की ग़रीबी बताई गयी है : ढील धोती बनिया, उल्टा मोछ सुबीर, बेंडा पैर कुम्हार के टीनू के पहचान / अर्थात् बनिया ढीली धोती पहनता है, वीर मूँछ उलट कर रखता है और कुम्हार नंगे पैर रहता है।[26]

एस.डब्ल्यू. फैलन भी अपने 1887 में संकलित कहावत कोश में कुम्हार से संबंधित कहावत दर्ज करते हैं : कुम्हार के घर बासन का काल, कुम्हार के घर चुक्के का दु:ख / अर्थात् कुम्हार, जो बर्तन गढ़ता है, उसके स्वयं के घर में भुखमरी के कारण बर्तनों का अकाल रहता है।[27]

कुम्हार जाति के बारे में स्वयं संतराम का कहना था :

> ये लोग मिट्टी के बर्तन नहीं बनाते। इन पर 'कुम्हार' का लेबल जन्म-जाति के कारण ही लगा है। ये लोग देश-देशांतर में वाणिज्य-व्यापार करते हैं। बहुत से लोगों के पास खच्चर हैं। इन पर वे माल ले जा कर पहाड़ी स्थानों में बेचते हैं।[28]

इस पृष्ठभूमि में संतराम को बहुत जल्दी ही शिक्षा के महत्त्व का एहसास हो गया। कई अध्येताओं ने यह विश्लेषित किया है कि औपनिवेशिक भारत में, जहाँ अस्पृश्यता और जाति-वर्गीकरण को शैक्षणिक संस्थानों के माध्यम से पुन: उत्पन्न किया गया, वहीं दलित बुद्धिजीवियों की पहली पीढ़ी ने

---

[23] संतराम बीए (1963) : 5-6; संतराम बीए (1952) : 2, 7.

[24] एच.ए. रोज (1911) : 562.

[25] *गज़ट ऑफ़ द होशियारपुर डिस्ट्रिक्ट, 1883-4* (1885) : 107.

[26] इन कहावतों के लिए देखें, सतनाम सिंह (2008) : 13-4.

[27] एस.डबल्यू. फ़ैलन (1991) : 144. मूल संस्करण 1886 में प्रकाशित.

[28] संतराम बीए (1963) : 4.

शिक्षा, ज्ञान, भाषा और प्रिंट को अपनी मुखरता और अग्रगति के एक केंद्रीय तत्त्व के रूप में समझा।[29] यह भी तर्क दिया गया है कि प्रिंट पत्रकारिता ने हिंदी में एक प्रति-दलित लोकवृत्त विकसित करने में मदद की, जिसकी सीमाएँ 'मुख्यत: जाति के व्याख्यात्मक विमर्श में अवस्थित थीं।'[30] संतराम ने जाति की प्रभावशाली आलोचना में इन उपकरणों को विकसित किया और अपनी शिक्षा, कर्म और लेखन के ज़रिये एक प्रकार से स्वयं को निर्मित किया। कई अन्य दलित लेखकों के समान वे भी दलितों के सम्मान और गति के लिए प्रिंट और प्रकाशन को काफ़ी महत्त्वपूर्ण उपकरण मानते थे।[31] संतराम ने बजवाड़ा, अम्बाला, जालंधर और लाहौर में छात्रवृत्तियों द्वारा शिक्षा हासिल की, 1909 में बीए की डिग्री प्राप्त की और 1912 से सक्रिय लेखन शुरू किया।[32] तब से उन्होंने अपने तमाम लेखन में अपना जातिसूचक परिचय त्याग दिया और अपने नाम संतराम के साथ अपनी शैक्षणिक योग्यता और डिग्री बीए को अपना परिचय बना लिया— यह उनके नाम का अभिन्न अंग बन गया।[33] नामकरण, और उसमें परिवर्तन, दलितों द्वारा कलंकित अतीत को चुनौती देने में एक केंद्रीय राजनीतिक तत्त्व रहा है।[34] संतराम ने इसे शिक्षा के साथ क़रीब से जोड़कर उसे एक व्यापक अर्थ दिया, जैसा कि उस समय के कई अन्य लेखकों ने भी किया था।

यह कहा गया है कि दलित आत्मकथाएँ अपमान के अनुभवों को निरंतर बयान करती हैं और इस प्रकार 'समाज में एक-दूसरे के साथ व्यवहार को संचालित करनेवाले मानकों पर सार्वजनिक दावेदारी' करती हैं।[35] संतराम की आत्मकथा की स्मृतियाँ भी जाति के पूर्वग्रहों और इसके बरअक्स एक सम्मानजनक ज़िंदगी जीने के प्रयासों से रंजित है। उनके स्कूल और कॉलेज जीवन में शूद्र पहचान के कारण अपमान के कड़वे-कसैले अनुभव बेहद कटु, तीखे और प्रत्यक्ष थे जो *मेरे जीवन के अनुभव* के स्व-विवरणों में प्रमुखता से मिलते हैं। संतराम कहते हैं :

> जब चौथी कक्षा में मैं अम्बाला स्कूल में भरती हुआ, तो रजिस्टर में मेरी जाति भी लिखी गयी। ... मेरे सहपाठी मुझे 'कुम्हार' कह कर छेड़ने लगे। छेड़ते भी क्यों न, जब तुलसीदास जैसे महात्मा और महाकवि कह गये हैं : जे बर्नाधम तेली कुम्हारा। / स्वपच किरात कोल कलवारा।। ... मैं उनके व्यंग चुपचाप सहन करता रहा।[36]

आगे संतराम अपने कॉलेज का अनुभव बयान करते हैं जब वे लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज की बीए की कक्षा में पढ़ते थे :

> मैं होस्टल के जिस किचन में खाना खाता था वह बड़ा कट्टरपंथी भोजनालय था। ... लड़कों ने एक चिट लिख कर मेरी सीट पर और माली जाति के मेरे एक दूसरे मित्र ...की सीट पर चोरी से रख दी। चिट पर लिखा था कि आप क्योंकि नीची जाति के हैं, इसलिए आप चौके से बाहर खाना खाया करें, नहीं तो प्रिंसिपल के पास शिकायत जाएगी। ... तब मैंने कहा कि प्रिंसिपल छोड़ तुम गवर्नर के पास शिकायत ले जाओ, मैं चौके के भीतर ही बैठ कर खाना खाऊँगा।[37]

---

[29] फ़िलिप कोन्स्टेबल (2000) : 383-422; ऑक्ज़िलिअरी कमेटी ऑफ़ द इण्डियन स्टेच्युटरी कमीशन (1930) : 217-28; मैनुएला सियाटी (2006) : 899-916.

[30] लौरा ब्रुएक (2014) : 50.

[31] दलित साहित्यिक लेखन का विभिन्न भाषाओं में उल्लेखनीय विस्तार हुआ है. देखें, के. सत्यनारायण और सूज़ी थारू (2011); के. सत्यनारायण और सूज़ी थारू (2013).

[32] संतराम बीए (1963) : 9; सतनाम सिंह (2008) :13.

[33] मदन गोपाल (1987).

[34] शैलजा पायक (2011) : 217-41; ज्ञानेंद्र पाण्डे (2013) : 207-10; अनुपमा राव (2009) : 205-13; उदय कुमार (2016) : 6.

[35] उदय कुमार (2016), वही : 17.

[36] संतराम (1963) : 16. यहाँ वे तुलसीदास पर स्पष्ट कटाक्ष करते हैं.

[37] वही : 17-18.

संतराम को बाद में भी लगातार जाति के दंश का सामना करना पड़ा। अपनी जीवनी में एक अन्य स्थान पर वे लिखते हैं :

> सियालकोट के किसी श्री मूलराज नागर नाम के एक जीर्ण मताभिमानी व्यक्ति ने मेरे जात-पाँत तोड़क आंदोलन से चिढ़ कर गालियों से भरा एक विज्ञापन छाप कर बाँटा। ... उसमें उन्होंने लिखा कि संतराम अपनी जाति चाहे जितना ही क्यों न छिपाए, परंतु उसके लेखों में गधे की हिनहिनाहट से उसकी कुम्हार जाति छिपी नहीं रहती।[38]

ऐसी स्मृतियों के ज़रिये संतराम सृजनात्मक रूप से अपना 'स्व' बुनते हैं जिसमें जाति कलंक के धागे मिलते हैं। संतराम के विवरणों में रोज़ाना के जाति दंश, खान-पान और चमड़ी के रंग संबंधी मिथ, हिंदू धर्मग्रंथों और जातिवादी बुद्धिजीवियों की समालोचना रहती है। इसके ज़रिये जाति निजी और सार्वजनिक ज़िंदगी में बहुस्तरीय आलोचना की शक्ल ग्रहण करती है।

विवादों से भरे माहौल में संतराम के लिए दयानंद सरस्वती का शिक्षण और पंजाब में आर्य समाज का विस्तार— आर्य समाज ने सिद्धांत और कथन के स्तर पर अपने को जाति से अलग कर लिया था— काफ़ी आकर्षक था।[39] विद्वानों ने इंगित किया है कि कई दलित और निम्न जाति के लोग आर्य समाज के समर्थक बन गये थे। पंजाब में दलित बुद्धिजीवियों की पहली पीढ़ी ऐसे ही लोगों के बीच से उभरी थी।[40] आदधर्म के कई कार्यकर्ता भी पहले आर्य समाज से जुड़े हुए थे।[41] 1901 में आर्य समाज के ज़्यादातर सदस्य हिंदू धर्म की ऊँची जातियों से वास्ता रखते थे, पर इसके बाद 1911 तक पंजाब में संगठन की सदस्यता में भारी वृद्धि हुई। तत्कालीन जनगणना के एक अनुमान के अनुसार इस क्षेत्र के कोई दो-तिहाई आर्य समाजी निम्न जाति के थे।[42] होशियारपुर इसका एक सक्रिय आधार था जहाँ बड़ी संख्या में अस्पृश्य थे— आबादी का कोई 23 प्रतिशत।[43]

यह उल्लेखनीय है कि संतराम और आदधर्म आंदोलन के तेजस्वी नेता मंगू राम, दोनों ही होशियारपुर से थे। मार्क जुर्गेंस्मेयर यह बताते हैं कि आर्य समाज की विचारधारा ख़ासकर व्यवसायी जाति के शहरी हिंदुओं में भी लोकप्रिय हो गयी थी।[44] संतराम का आर्य समाज के समतावादी सिद्धांतों और अपेक्षाकृत प्रगतिशील विचारधारा के प्रति आकर्षण उनके शैक्षणिक, शहरी और सामाजिक संदर्भों में सहज ही समझा जा सकता है।

अन्य निम्न जातियों की तरह[45] संतराम ने आर्य समाज के शिक्षण और विचारधारात्मक पहलुओं को इस दृष्टि से स्वीकार या ख़ारिज किया कि आर्य समाज की कौन-सी बातें उनकी सामाजिक हैसियत और समानता के मक़सदों की पूर्ति में सहायक हो सकती थीं। वे शाकाहार, शुद्धि और ब्रह्मचर्य के समर्थक थे, लेकिन ब्रह्मचर्य को उन्होंने जल्द ही पूरी तरह नकार दिया। जाति को लेकर आर्य समाज का ज़मीनी विरोधाभास एक हद तक संतराम का अपना विरोधाभास भी था। लेकिन साथ ही उनका आर्य समाज के ऊँची जाति के समर्थकों के साथ नियमित टकराव भी था। संतराम लगातार इस बात का उलाहना देते थे कि आर्य समाजियों ने उनके रास्ते में कितनी रुकावटें पैदा कीं और कैसे जात-पाँत तोड़क मण्डल और उनका मुख्य विरोध आर्य समाज द्वारा ही शुरू हुआ।[46]

---

[38] संतराम (1963), वही : 225.
[39] केनेथ जोंस (2006).
[40] मार्क जुर्गेंस्मेयर (2009); सी.एस. ऐडकोक (2014) : 128.
[41] मार्क जुर्गेंस्मेयर, वही : *27, 35-7;* रोंकी राम (2004) : 323-49.
[42] *सेंसस ऑफ़ इण्डिया, 1911* (1912) : 123-4. 1921 में भी यह प्रवृत्ति जारी रही; *सेंसस ऑफ़ इण्डिया,* 1921 (1922) : 181.
[43] मार्क जुर्गेंस्मेयर, वही : 72.
[44] वही : 38.
[45] रामनारायण रावत (2012). ; ऐडकोक (2014).
[46] संतराम (1963) : 199.

संतराम का हिंदी प्रेम पंजाब में आर्य समाज की प्रगति के साथ-साथ घटित हुआ। वे *मेरे जीवन के अनुभव* में बताते हैं :

> कॉलेज के तीसरे वर्ष तक मुझे नागरी अक्षरों का ज्ञान तक न था। उस समय मेरे विचार से सबसे मधुर भाषा फ़ारसी, सबसे सुंदर देश फ़ारस और सबसे बड़े कवि सादी, उमर ख़य्याम और फ़िरदौसी आदि थे। ... परंतु लाहौर में आर्य-समाज के सत्संग से विचारों में भारी परिवर्तन हो गया। ... उन दिनों आर्य समाज का प्रमुख पत्र *सद्धर्म्म प्रचारक* उर्दू में निकला करता था। मैं उस पत्र को बड़े चाव से पढ़ता था। ... कुछ दिनों बाद उन्होंने घोषणा कर दी कि अमुक दिनांक से पत्र हिंदी में निकलेगा। ... पत्र को पढ़ने के लिए मैंने नागरी अक्षर सीखना आरम्भ कर दिया। ... उसी प्रभाव से मेरी रुचि उर्दू से हटकर हिंदी की ओर हुई।[47]

संतराम अंग्रेज़ी, फ़ारसी, उर्दू और हिंदी में निपुण थे और अपनी दूसरी पत्नी सुंदरबाई से उन्होंने मराठी और गुजराती सीखी थी।[48] उन्होंने कई प्रकार के विषयों पर हिंदी में लेखन किया और कई लेखकों की रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया जिसमें अल-बरूनी, इत्सिंग, हशनु ओ. हारा और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मैरी स्टॉप्स शामिल हैं।[49] संतराम ने अपने आपको हिंदी भाषा के प्रचारक के रूप में प्रस्तुत किया। हिंदी की दुनिया के प्रिंट-लोकवृत्त में अपना नाम स्थापित किया। ख़ासकर, जाति के विरोध में उनकी किताबें, पर्चे, पत्रिकाएँ और हज़ारों लेख काफ़ी प्रभावशाली साबित हुए।[50] उन्होंने दो मासिक पत्रिकाओं का सम्पादन किया— उर्दू में *जात-पात तोड़क,* जिसका नाम बाद में *क्रांति* रखा गया, और हिंदी में *युगांतर,* जिसके द्वारा जात-पाँत तोड़क मण्डल का संदेश प्रचारित किया गया।[51] भारत विभाजन के बाद दोनों ही प्रकाशन बंद हो गये। इसके अलावा संतराम कई हिंदी पत्रिकाओं से सम्पादक के रूप में जुड़े थे, हालाँकि उनमें से कई अल्पकालिक थीं क्योंकि पंजाब में हिंदी का प्रसार उतना व्यापक नहीं था। उदाहरण के लिए, उन्होंने जनवरी, 1914 में लाहौर से मासिक हिंदी पत्रिका *उषा* शुरू की, जिसे उन्हें अप्रैल, 1915 में बंद करना पड़ा। उन्होंने जनवरी, 1922 में कन्या महाविद्यालय, जालंधर शहर के हिंदी मासिक *भारती* का सम्पादकीय प्रभार सँभाला जो 22 महीने तक चला।[52] संतराम के लेख कई प्रसिद्ध हिंदी पत्रिकाओं जैसे *सरस्वती, चाँद, सुधा, आजकल, माधुरी, आज, हिंदुस्तान, जागृति* आदि में निरंतर छपते रहते थे। आज़ादी के बाद वे होशियारपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका *विश्वज्योति* के साथ जुड़ गये थे।[53] संतराम की हिंदी सेवा के लिए उन्हें पंजाब सरकार ने 'हिंदी के सर्वश्रेष्ठ विद्वान' के रूप में सरोपा दिया और उस उपलक्ष्य में 1961 में उनके जीवन और कृतित्व पर एक अभिनंदन ग्रंथ भी प्रकाशित किया।

---

[47] वही : 133-4.

[48] वही :109.

[49] संतराम द्वारा अनुवाद की गयी किताबों की एक लम्बी सूची है. 1917-20 के दौरान उन्होंने अलबरूनी तथा इत्सिंग की भारत-यात्राओं का अनुवाद किया. इन दोनों पुस्तकों के लिए उन्हें पंजाब सरकार ने सम्मानित भी किया था. उनके द्वारा अनूदित विभिन्न पुस्तकों का उल्लेख संदर्भ-सूची में किया गया है.

[50] इनमें शामिल हैं : *हमारा समाज, मेरे जीवन के अनुभव,* और कई पुस्तिकाएँ. उदाहरण के लिए, जात-पाँत के संबंध में कुछ कड़वे-कसैले अनुभव, होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1958; *अगर कश्ती डूबी तो डूबोगे सारे,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1974; *राष्ट्र का सबसे बड़ा शत्रु,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1968; *हिंदू और जात-पाँत,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1967, दूसरा सं; पाकिस्तान की स्थापना में हिंदुओं का हाथ, होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1969; *राष्ट्र-रक्षा के उपाय,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1965; *अंतर्जातीय विवाह ही क्यों,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1959; *राष्ट्रीय एकता और जतिभेद,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1963; *हिंदुत्व जो हिंदुओं को ही ले डूबा,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1962; *विनाश का मार्ग छोड़िए,* होशियारपुर : जात-पाँत तोड़क मण्डल, 1971. इनमें से कई को सम्यक प्रकाशन, दिल्ली ने पुनर्प्रकाशित किया है. इनके अलावा, संतराम ने *सरस्वती, हंस, सुधा, प्रभा, माधुरी,* और साप्ताहिक आज जैसे कई हिंदी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में नियमित रूप से लिखा. देखें, संतराम (1963) : 70. हिंदी पत्रकारिता में योगदान के लिए उन्हें हिंदी साहित्य अकादेमी के पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया.

[51] संतराम (1963) : 186-7.

[52] वही : 32-3.

[53] वही : 136.

युगांतर पत्रिका का आवरण, 1932 में आरम्भ हुई यह पत्रिका चार साल तक प्रकाशित हुई; संतराम की पहली पत्नी गंगा देवी, मृत्यु जून, 1924; संतराम के पुत्र वेदव्रत, मृत्यु मई, 1928, जब वे केवल 14 वर्ष के थे. साभार : मधु चड्ढा

हिंदी की दुनिया में आकंठ डूबे संतराम के लिए प्रिंट जाति के विरोध और रूपांतरण का एक महत्त्वपूर्ण लेकिन अनिर्णीत मंच बन गया। व्यक्तिगत स्तर पर कई दुर्घटनाओं ने— जून, 1924 में उनकी पहली पत्नी गंगा देवी और मई, 1928 में उनके पुत्र वेदव्रत के निधन— संतराम के शुरुआती वयस्क जीवन को बहुत प्रभावित किया जिसका दुखपूर्ण वर्णन उन्होंने अपनी आत्मकथा में किया है। कुछ सालों बाद *जात-पाँत तोड़क मण्डल* में उनके दोस्त भूमानंद ने उन्हें अंतर्जातीय विवाह के लिए तैयार किया और फिर संतराम के जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। पहली पत्नी से उनकी एक बेटी गार्गी थी, उनकी एकमात्र संतान जो जीवित रही और जिसके वे बेहद क़रीब थे।[54] यद्यपि संतराम का बृहद् परिवार सम्पन्न था, पर वे लगातार अपनी ग़रीबी और आर्थिक-वित्तीय दिक़्क़तों की चर्चा करते हैं— अपने सिद्धांतों से कभी समझौता न करने वाले संतराम के पास कभी स्थायी नौकरी नहीं रही, न ही वे कभी किसी जीविका से संतुष्ट हुए।[55]

लेख के बाक़ी हिस्से में मैं संतराम की आत्मकथा के टुकड़े-टुकड़े और अन्य लेखन के ज़रिये, जो एक हद तक उनके जीवन का विवरण भी है और कुछ जात-पाँत तोड़क मण्डल का भी इतिहास है, यह बताने की कोशिश करूँगी कि संतराम ने किस प्रकार और क्यों एक मिश्रित उदारतावादी फ़लक बनाने की कोशिश की जो गाँधी-आम्बेडकर और आर्य समाज-आदधर्म के बीच मध्यवर्ती ज़मीन पर खड़ा होता है। यहाँ संतराम जाति की समालोचना में आधुनिकता का विरोधाभासी इस्तेमाल करते हैं और अंतरंगता एवं अंतर्जातीय विवाह की सम्भावनाओं का पक्ष लेते नज़र आते हैं। इन तथ्यों से ज़ाहिर होता है कि वे हिंदू धर्म की सीमाओं के अंदर तैर रहे थे, लेकिन साथ ही अकसर उसकी मुख्यधारा की लहरों के ख़िलाफ़ भी चले जाते थे।

इंद्रधनुष का नीला रंग : स्व और जात-पाँत तोड़क मण्डल का सामाजिक इतिहास

नवम्बर, 1922 में लाहौर में परमानंद के जोशीले भाषणों से प्रभावित होकर संतराम और उनके मित्र समूह ने जात-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना की। यह नामकरण संतराम ने किया। शुरू में इससे दो स्त्रियों समेत,18 लोग सम्बद्ध थे।[56] कई अन्य रैडिकल क्षेत्रीय जाति आंदोलनों से अलग, जात-पाँत तोड़क मण्डल मुख्यत: शिक्षितों के बीच का शहरी आंदोलन था।

---

[54] वही : 73, 93-8; गार्गी की पुत्री और संतराम की पोती मधु चड्ढा से साक्षात्कार, 25 जनवरी, 2016, दिल्ली.

[55] वही : 19, 32-3, 44-6.

[56] वही : 184-5; द *जात-पाँत तोड़क मण्डल, लाहौर : जनरल रिव्यू* (1939) : 1.

प्रारम्भ में परमानंद संगठन के अध्यक्ष थे, पर सचिव के रूप में संतराम इसके मुख्य प्रेरक तत्त्व थे। समाचारपत्रों में संगठन के बारे में लेख प्रकाशित हुए और संगठन ने अपनी मासिक पत्रिकाएँ— *जात-पाँत तोड़क, क्रांति* और *युगांतर*— प्रकाशित की जिसके सम्पादक संतराम थे। संगठन ने जाति के ख़िलाफ़ कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित कीं और उनका नि:शुल्क वितरण किया। इसके अलावा संगठन के सदस्यों ने आर्य समाज की विभिन्न बैठकों और समारोहों में जा-जा कर जाति के ख़िलाफ़ भाषण और वक्तव्य भी दिये।[57] जात-पाँत तोड़क मण्डल का पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण नियम था— जन्म आधारित जाति व्यवस्था को तोड़ना और अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करना। संगठन के विकास और उसकी गतिविधियों का यह एक केंद्रीय तत्त्व था जिस पर मैं थोड़ा बाद में चर्चा करूँगी।

शोधकर्ताओं ने दिखाया है कि औपनिवेशिक भारत में जाति औपनिवेशिक पूँजीवाद, समाज सुधार और हिंदू राष्ट्रवाद के लिए एक बहुरूपी कोटि बन गयी— यहाँ दसवर्षीय जनगणना ने भी एक केंद्रीय भूमिका निभाई जिसमें एक तरफ़ तो हिंदू धर्म का राजनीतीकरण हुआ, तो दूसरी तरफ़ जाति संरचना का 'सेकुलरीकरण' हुआ और उसे चुनौती भी मिली।[58] अपनी आत्मकथा में संतराम अपने जीवन-विवरण का एक हिस्सा 1931 में जात-पाँत तोड़क मण्डल के उस आंदोलन से जोड़ते हैं जिसमें जनगणना और कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में जाति का कॉलम हटाने की माँग बुलंद की गयी थी। इससे संगठन को एक व्यापक दायरा हासिल हुआ और देश के कई बड़े शहरों के लोग संगठन से जुड़ने लगे।[59] 1931 में पंजाब की जनगणना में यह दर्ज किया गया :

> साथ-ही-साथ निम्न जाति के लोगों में ... कोई जाति नहीं दर्ज करने की प्रवृत्ति पाई गयी। इस बारे में प्रचार ख़ासकर जात-पाँत तोड़क मण्डल द्वारा किया गया। ... निर्देश जारी हुए कि 'कोई जाति नहीं' दर्ज करनी चाहिए। जहाँ लोगों को जाति का उल्लेख करने में ईमानदारी से आपत्ति है, उनके शादी-विवाह और खान-पान के रिश्तों में जाति का अस्तित्व समाप्त हो गया है।[60]

यह दिलचस्प है कि मार्क जुर्गेंस्मेयर 1931 की जनगणना और उसके इर्द-गिर्द आदधर्म के अभियान को एक ऐसा 'अभिषेकपूर्ण पल' बताते हैं जिसमें 'सब एक साथ जुड़ गये', क्योंकि यह आंदोलन आदधर्म को सिख, मुसलमान और हिंदू से अलग एक पृथक् धार्मिक समुदाय का स्वरूप देने में सफल हुआ। पर इससे आदधर्म और आर्य समाज के बीच तनाव बढ़ गया।[61] संतराम के 1931 की जनगणना में हस्तक्षेप की हमें सम्भवत: इसी पृष्ठभूमि में समीक्षा करनी चाहिए।

आर्य समाज की विचारधारा के क़रीब होने के बावजूद उसके साथ जात-पाँत तोड़क मण्डल और संतराम का एक तनावपूर्ण संबंध था। यह तनाव आदधर्म आंदोलन के संबंध में भी नज़र आता है। संतराम ने धर्म परिवर्तन की आलोचना की, शुद्धि का समर्थन किया और शाकाहारी भोजन की वकालत की। उन्होंने निम्न जातियों को हिंदू धर्म के दायरे में शामिल करते हुए जाति की कड़ी आलोचना की और निम्न जातियों की कुछ निहित कथित विशेषताओं और व्यवहारों को भी 'बेहतर' बनाने की कोशिश की। लेकिन साथ ही, उन्होंने इन हलक़ों में आर्य समाज के शिक्षण की नक़ल न करके उस पर लगातार सवालिया निशान लगाए; उसकी रैडिकल व्याख्या की और जातिगत पूर्वग्रहों की अनवरत कड़ी निंदा करते रहे। संतराम के लिए शुद्धि आक्रामक हिंदू राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति नहीं थी, बल्कि यह निम्न जाति के लोगों के लिए जाति सुधार की एक रैडिकल और मुखर अभिव्यक्ति

---

[57] संतराम (1963) : 185-7; *द जात-पाँत तोड़क मण्डल, लाहौर : जनरल रिव्यू* (1939) : 2-3. ; संतराम (1938) : 1-2.

[58] इशिता बनर्जी-दुबे (2010) : xv-lxiv; सुज़न बेली (1999) : 1-96, 144-86; निकोलस डर्क्स (2001) : 3-18.

[59] संतराम (1963) : 187-8; *जात-पाँत तोड़क मण्डल, लाहौर : जेनरेल रिव्यू* (1939) : 4-5; संतराम (1938) : 2. ; 'एंटी-कास्ट सेंसस कैंपेन', *इण्डियन सोशन रिफ़ॉर्मर* (1930) : 44; *इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर* (1931) : 395-6.

[60] *सेंसस ऑफ़ इण्डिया,* 1931 (1933) : 325.

[61] जुर्गेंस्मेयर (2009) : 72-80.

थी।[62] उनके द्वारा सम्पादित पत्रिका *युगांतर* के कुछ कार्टून अकसर जाति के निर्देशात्मक विमर्शों की देहरी लाँघ जाते थे। उदाहरण के लिए, शुद्धि के दायरे में बँधे होने के बावजूद, एक कार्टून में दलित स्त्रियों के यौन शोषण की ओर इशारा करते हुए ब्राह्मण पर व्यंग्य कसा गया।

रोमांस, प्यार और शादी के कारण इस्लाम में धर्म परिवर्तन को लेकर अपनी उद्विग्नता ज़ाहिर करते हुए भी अपने लेखन में संतराम आर्य समाज के कई लेखकों की तरह मुसलमान, पीर और इस्लाम को लेकर कोई नकारात्मक विमर्श मुखर करते हुए नहीं दिखते। संतराम ने ऐसी शादियों को स्वीकार करने के लिए मुस्लिमों के बृहत्तर मानस पटल की सराहना की और इस संदर्भ में हिंदुओं के संकीर्ण रवैये की निंदा की थी।[63] मिशनरियों और ईसाइयों के प्रति भी उनका रवैया नरम था। वास्तव में, उन्होंने इस्लाम और ईसाई धर्म के चुनिंदा उदाहरण देकर अपने तर्क गढ़े। हिंदू धर्म के अंदर होते हुए भी संतराम के विचार कई बार आगे निकल जाते थे। उन्होंने उद्वेलित होकर लिखा :

> यदि मैं अछूत होता तो मैं भी इस दासता से छुटकारा पाने के लिए मुसलमान हो जाता। ... अछूत इस समय हिंदुस्तान में कौन सुख भोग रहे हैं जो पाकिस्तान में उनका जीवन दु:खमय हो जाएगा। ... यदि मैं मुसलमान होता तो मैं जिन्ना से भी अधिक हिंदू शासन का विरोध करता। मैं जोशीला हिंदू होते हुए भी ईमानदारी से अनुभव करता हूँ कि यदि जात-पाँत का अंत नहीं होगा तो मेरे लिए हिंदुस्तान की अपेक्षा पाकिस्तान में रहना अच्छा है। ... ब्राह्मण की स्वाधीनता शूद्र और मुसलमान की पराधीनता है। ... भारतीय मुसलमानों और अछूतों के हिंदू-विरोध का मूल कारण भी मैं हिंदुओं की दूषित मनोवृत्ति को ही समझता था।[64]

संतराम की आलोचना करते हुए एक समाचार पत्र *हिंदू* ने कहा : 'श्री संतराम जी के आजकल के लेखों पर यदि उनका नाम लिखा न हो तो ऐसा मालूम देने लगता है कि ये किसी हिंदू-प्रेमी के लिखे हुए नहीं, वरन मिस मेयो के किसी भाई के हैं।'[65] इस प्रकार संतराम एक मिली-जुली, समन्वित संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहे थे— जाति के ख़िलाफ़ तर्क जुटाने के लिए विविध धार्मिक धाराओं से सृजित करना, लेकिन साथ ही उनका परिप्रेक्ष्य हिंदू प्रकृति का रहा। इसलिए एक स्थान पर उन्होंने लिखा : 'जाति-भेद सामाजिक रूप से हिंदुओं के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुआ है। ... हिंदुओं की संख्या-वृद्धि संतोषजनक नहीं। ... जाति-भेद के कारण ही हमारा 'शुद्धि' आंदोलन सफल नहीं हुआ।'[66] यह उनकी वैचारिक स्थिति के विरोधाभासों को रेखांकित करता है।

हिंदूवाद के दायरे के अंदर सक्रियता के बावजूद संतराम की शूद्र पृष्ठभूमि, वर्ण व्यवस्था के ख़िलाफ़ और अंतर्जातीय विवाहों पर उनके रैडिकल विचारों के कारण उन्हें हिंदू संकीर्णतावादियों और आर्य समाज, दोनों का कट्टर विरोध झेलना पड़ा। एक बार संतराम ने अपने दो दलित मित्रों को घर पर खाने के लिए बुलाया। उन्हें अपने रसोईघर में खाना खिलाया और अपने कुएँ से पानी पिलाया। पूरे गाँव ने संतराम का विरोध किया। पंचों ने उनका 'हुक्का पानी' बंद कर दिया। संतराम ने कहा : 'हुक्का मैं पीता नहीं, पानी मेरे घर में है।'[67] प्रतिष्ठित हिंदी लेखक निराला ने अपना ब्राह्मणवादी रुझान दिखाते हुए एक लम्बे लेख 'वर्णाश्रम धर्म की वर्तमान स्थिति' में संतराम द्वारा जात-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना पर गहरा दु:ख व्यक्त करते हुए संतराम पर कटु प्रहार किया। उन्होंने अंतर्जातीय विवाह तथा अंतर खान-पान की तीखी आलोचना की और जाति विभाजन व वर्णाश्रम धर्म का पुरज़ोर समर्थन किया। निराला

---

[62] ऐडकोक (2014).
[63] संतराम (1963) : 48-53.
[64] वही : 206-13.
[65] *हिंदू*, 6 अक्टूबर 1943.
[66] संतराम (1949) : 189-90.
[67] गार्गी चड्ढा (1988) : 28-34.

रसीली हो, छबीली हो, क़रारी, इधर तो देखना हंस के ज़रा री! गले यदि कामवश तुमको लगा लूँ— रहूँ फिर भी सदा ब्राह्मण खरा री!
नहीं पर शुद्धि हो सकती तुम्हारी, सदा भंगन रहोगी हाय, प्यारी!
स्रोत : *युगांतर,* अक्टूबर 1933 : 26.

के लेख के कुछ अंश इस प्रकार हैं :

> दोषों में संस्पर्श-दोष भी एक माना गया है। ... म्लेच्छों के राज्य में रहने से उनके संस्पर्श से द्विजातीयत्व भी नष्ट होता है, दुराचरण फैलते हैं, समाज में अधोगति होती है, वर्णाश्रम-धर्म नहीं रह जाता। ... शूद्रों के प्रति केवल सहानुभूति प्रदर्शन कर देने से ब्राह्मण-धर्म की कर्तव्यपरता समाप्त नहीं हो जाती, न जाति-पाँति तोड़क मण्डल के मंत्री संतरामजी के क़रार देने से इधर दो हज़ार वर्ष के अंदर का सम्पार का सर्वश्रेष्ठ विद्वान महामेधावी त्यागीश्वर शंकर शूद्रों के यथार्थ शत्रु सिद्ध हो सकते हैं। ... जाति-पाँति तोड़क मण्डल को मैं किसी हद तक सार्थक समझता, यदि वह 'जाति-पाँति-योजक मण्डल' होता। ... अछूतों के साथ रोटी-बेटी का संबंध स्थापित कर उन्हें समाज में मिला लिया जाय या इसके न होने के कारण ही एक विशाल संख्या हिंदू-राष्ट्रीयता से अलग है, यह एक कल्पना के सिवा और कुछ नहीं। दो मनों की जो साम्य-स्थिति विवाह की बुनियाद है और प्रेम का कारण, इस तरह के विवाह में उसका सर्वथा अभाव ही रहेगा। और, जिस यूरोप की वैवाहिक प्रथा की अनुकूलता संतरामजी ने की है, वहाँ भी यहाँ की तरह वैषम्य का साम्राज्य है। किसी लार्ड-घराने की लड़की के साथ किसी निर्धन और निर्गुण मज़दूर का विवाह नहीं हुआ।[68]

संतराम के आर्य समाज के साथ अंतर्निहित अंतर्विरोध और भी ज़्यादा उजागर हैं क्योंकि उनके कुछ विचार आर्य समाज के अग्रणी विचारकों से सीधे टकराते थे, इसलिए आर्य समाज में सत्ता के स्थापित ढाँचे से अलग-थलग पड़ते थे। संतराम अपने जीवन की एक घटना का हवाला देकर इसे बख़ूबी बयान करते हैं। 1914 में लाहौर ज़िले में पट्टी के पास संतराम ने एक कृषि आश्रम में खेती करते हुए कई देशों के कृषि विभागों का अध्ययन किया। उनके आधार पर उन्होंने बिखरी पड़ी मृत पशुओं की हड्डियाँ इकट्ठा करके अपने खेतों में उनकी खाद डालने का विचार किया। संतराम के मित्र और *आर्य गज़ट* के सम्पादक तथा कहानीकार सुदर्शन ने हड्डियों का ढेर खेत में देख लिया और बिगड़ कर कहा कि संतराम पाप कर रहे हैं। संतराम के इस तर्क को कि यह बहुमूल्य और उपजाऊ खाद है, सुदर्शन ने अनसुना कर दिया और अपने पत्र में संतराम के ख़िलाफ़ टिप्पणी लिखी। गाँव भर में, विशेषकर हिंदुओं के बीच, और विस्तृत परिवार में, संतराम का घोर विरोध हुआ लेकिन वे अपनी

[68] सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'(1929) : 836-43.

बात और काम पर डटे रहे।[69] *मेरे जीवन के अनुभव* के कई पृष्ठों में ऐसी घटनाओं का चित्रण है जहाँ संतराम यह दिखाते हैं कि यद्यपि जात-पाँत तोड़क मण्डल वर्ण व्यवस्था के दो-टूक ख़िलाफ़ था, पर आर्य समाज के लिए यह एक पवित्र सिद्धांत था। यहाँ तक कि आर्य समाज ने जात-पाँत तोड़क मण्डल के नाम का भी विरोध किया और संतराम को सुझाव दिया कि वे अपनी संस्था का नाम जात-पाँत तोड़क मण्डल से बदलकर 'वर्ण व्यवस्था मण्डल' या 'हिंदू साम्यवादी दल' रख लें, जिससे उन्हें चंदा भी मिलेगा। लेकिन संतराम का स्पष्ट मानना था कि मण्डल का काम जात-पाँत को मिटाना था, और इसलिए यही नाम उपयुक्त था।[70] 1924 तक आते-आते उनके कई आर्य समाजियों से गम्भीर मनमुटाव हो गये। निरंतर समझौता और तनाव अंततः आख़िरी टूटन बिंदु पर पहुँच गया जहाँ संतराम ने अपने को आर्य समाज से अलग कर लिया,[71] और वे सम्भवतः बौद्ध परम्परा के प्रति आकर्षित हुए।[72] इसीलिए वे स्पष्ट लिखते हैं : 'हमारी सारी शक्ति आर्य समाज के काम में लग जाती है और हमारा प्रचार नहीं हो पाता। तब हमने इस निरर्थक काम को आप ही छोड़ दिया।'[73] उनकी आत्मकथा प्रायः दलित आंदोलनों से सृजित विवरणों से जुड़ती है। लेकिन मंगू राम या आम्बेडकर से अलग, संतराम कभी भी अपने को हिंदू विमर्श से दूर नहीं ले जा पाए और कई बार जाति सम्मान के अस्पष्ट परिणामों वाली भाषा अख़्तियार करते दिखे।

दलित संगठनों और नेताओं के साथ उनका कोई ख़ास संबंध नहीं था, और न ही वे अपने समय के दलित आंदोलन के प्रति सहज थे। जाति की बेलाग आलोचना करने और अंतर्जातीय विवाह का प्रबल समर्थन करने के बावजूद वे मंगू राम की तरह दलित मुद्दों के नायक नहीं बन पाए। वास्तव में, उन्होंने उस समय के प्रभावी आदधर्म आंदोलन का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया, जबकि वे और मंगू राम एक ही क्षेत्र के थे और दोनों का देश-काल आपस में मिलता-जुलता था। मार्क जुर्गेंस्मेयर का कहना है कि जात-पाँत तोड़क मण्डल 'आदधर्म के लिए कोई आदर्श नहीं था क्योंकि इसकी शहरी, सुधारवादी हिंदू, अंतर्जातीय संरचना आदधर्म के लगावों से काफ़ी अलग थी।'[74] यह भी तर्क दिया जा सकता है कि जात-पाँत तोड़क मण्डल, आर्य समाज की ही तरह, आदधर्म आंदोलन के बढ़ते हुए प्रभाव से चिंतित था और दलितों को अपने साथ जोड़ कर और अपनी व्यापक हिंदू पहचान के ज़रिये उसकी बढ़त और ताक़त को रोकने की उम्मीद कर रहा था। लेकिन यह भी उल्लेखनीय है कि संतराम ने 1938 में जालंधर में सफ़ाई कर्मचारियों की हड़ताल का नेतृत्व किया।[75] मंगू राम और संतराम दोनों ने ही आंशिक रूप से आर्य समाज से प्रेरणा ली, पर दोनों ही उसके विचारों की सीमाबंदी के पार चले गये और अपने अलग-अलग तरीक़ों से उसके ख़िलाफ़ विद्रोह किया— संतराम ने उसके तहत और मंगू राम ने उसके बग़ैर। संतराम अपनी आत्मकथा में जो चुनाव और झुकाव दिखाते हैं— आर्य समाज के साथ तनावों पर उनका बारम्बार ज़ोर जबकि आदधर्म पर उनकी ख़ामोशी— उनके मध्य-मार्गी व्यक्तित्व की ओर इशारा करती है।

इसके साथ ही संतराम ने गाँधी और आम्बेडकर के बीच एक मध्यम मार्ग अख़्तियार किया— गाँधी की परेशान करने वाली कमियों, ख़ासकर सनातनी हिंदूवाद के प्रति उनके झुकाव का विरोध करते हुए भी हिंदू धर्म का समर्थन किया और आम्बेडकर के गुणों, ख़ासकर धर्मांतरण को लेकर

---

[69] संतराम (1963) : 38-41.
[70] वही : 226-8.
[71] जुर्गेंस्मेयर (2009) : 38-9.
[72] सतनाम सिंह (2008) : 3.
[73] संतराम (1963) : 203.
[74] जुर्गेंस्मेयर (2009) : 39.
[75] आर.के. क्षीरसागर (1994) : 323.

उनके रवैये के प्रति संकोच जताते हुए भी उनके विचारों का गुणगान किया। संतराम के विचार और कथन न केवल जाति पर गाँधी-आम्बेडकर विवाद में ख़ासा योगदान करते हैं, बल्कि उन दोनों की गुत्थमगुत्था के बीच में एक तीसरे पक्ष की ओर भी इंगित करते हैं। संतराम दोनों के साथ, दोनों के लिए मुश्किल नज़र आते हैं, यद्यपि वे आम्बेडकर के ज़्यादा क़रीब लगते हैं। संतराम का गाँधी के साथ कुछ तीखा आदान-प्रदान हुआ। वे अपनी जीवनी में एक दिलचस्प घटना का बयान करते हैं :

> सन् 1933 या 34 की बात है। महात्मा गाँधी लाहौर आये। ... हमारे जात-पाँत तोड़क मण्डल का एक डेपुटेशन उनसे मिलने गया। ... उन दिनों महात्मा गाँधी जात-पाँत में विश्वास रखते थे। ... मेरे प्रश्न करने पर वे बोले कि जात-पाँत में एक बड़ा लाभ यह है कि व्यवसायों में प्रतियोगिता बहुत कम हो जाती है। ... मैंने आपत्ति करते हुए कहा— 'यह ठीक है कि इस व्यवस्था में ब्राह्मण के लड़के को, अयोग्य होने पर भी, पठन-पाठन या मंदिर में पूजा का काम मिल जाएगा। क्षत्रिय का लड़का, कायर होने पर भी, सेना में सिपाही या मेजर बन जाएगा। ... परंतु एक भंगी, जिस के दादा-परदादा आठ आना मासिक पर टट्टी उठाते रहे हैं, विद्वान बनने की योग्यता रहते हुए भी, स्वयं टट्टी उठा रहा है, और उसके पोते-पड़पोते भी टट्टी उठाते रहेंगे। यह कहाँ का न्याय है? ... महात्माजी, आप जाति से बनिया हैं। बनिये का काम नमक-तेल बेचना है। फिर आप हमें उपदेश क्यों देते हैं? जाइए, कहीं जाकर दाल-आटे की दूकान खोल लीजिए!'[76]

संतराम पेरियार और आम्बेडकर, दोनों के साथ संवादरत थे और दोनों से उनकी नज़दीकी थी। उन्होंने जून 1953 में एक प्रमुख तमिल समाचारपत्र *विदुथलाई* में पेरियार के समर्थन में एक लेख प्रकाशित किया।[77] संतराम पेरियार से अपने वार्तालाप की चर्चा करते हैं, जब वे एक बार संतराम से मिलने उनके घर लाहौर आये थे। हिंदी और हिंदू समर्थक होते हुए भी संतराम पेरियार से न केवल संवाद करते हैं, बल्कि उनका पक्ष बिना किसी कटाक्ष या व्यंग्य के प्रस्तुत भी करते हैं। पेरियार ने कहा : 'हम ऐसी भाषा को क्यों अपनाएँ जिसका साहित्य हमें नीच और शूद्र बनाने में लगा है?' संतराम कहते हैं कि पेरियार की इस आपत्ति पर हमें ध्यान देना चाहिए।[78]

आम्बेडकर के प्रति उन्होंने प्राय: अपनी उत्कट प्रशंसा व्यक्त की और कभी उनकी खुली आलोचना नहीं की। कभी-कभार वे आम्बेडकर से थोड़ा परेशान ज़रूर हो जाते थे— यह जात-पाँत तोड़क मण्डल के उस सम्मेलन को स्थगित करने के निर्णय से ज़ाहिर होता है जिसमें आम्बेडकर आमंत्रित किये गये थे। संगठन के कई सदस्यों को आम्बेडकर के भाषण के वितरण-पूर्व मसविदे को पढ़ कर दिक़्क़त हुई। उस भाषण में हिंदू धर्म की सीधी, तीखी आलोचना की गयी थी और धर्मांतरण का समर्थन किया गया था। यद्यपि संतराम ने सीधे कुछ नहीं कहा और आम्बेडकर से उनकी व्यक्तिगत मित्रता बनी रही, पर ऐसा प्रतीत होता है कि वे प्रकारांतर से आम्बेडकर के भाषण की आलोचनाओं से कुछ हद तक सहमत थे, लेकिन साथ ही आम्बेडकर के विचारों का समर्थन करते हुए संतराम अपनी आत्मकथा में एक अन्य घटना का बयान करते हैं कि एक बार आम्बेडकर किसी सरकारी काम से लाहौर आये। जब नानकचंद पंडित ने आम्बेडकर से पूछा कि 'क्या कोई ऐसा उपाय है जिससे आप अपने धर्म-परिवर्तन के संकल्प को बदल दें?' आम्बेडकर बोले कि 'केवल एक ही उपाय है और वह यह कि जो कुछ जात-पाँत तोड़क मण्डल कहता है, हिंदू समाज उसे अपना ले। परंतु यह बात सौ वर्ष में भी सम्भव नहीं।' इस पर बद्रीदास बोले कि 'पंजाब में छूतछात बिल्कुल नहीं। चलिए हम आपको आर्य समाज के मंदिर ले चलते हैं।' आम्बेडकर चट बोले : 'आर्य समाज मंदिर में नहीं, किसी सनातन धर्मी देव-मंदिर में मुझे और मेरे साथ चार-पाँच दूसरे अछूतों को भी ले चलिए। तब

---

[76] संतराम (1963) : 234-5. यह भी देखें, संतराम का श्याम लाल मनचंदा से साक्षात्कार, 15 जुलाई 1971. : 18-9.

[77] फ़ाइल 2, 'व्यक्तिगत संग्रह : संतराम बीए के दस्तावेज़ों का संकलन', सूची 430, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, दिल्ली.

[78] संतराम (1963) : 251-3.

मैं आपकी बात सत्य मानूँ।' इस पर सब को चुप रह जाना पड़ा। आम्बेडकर की पीड़ा महसूस करते हुए संतराम इसी क्रम में लिखते हैं कि कैसे जब एक अछूत नवयुवक ने बड़ी कठिनाइयों से दयानंद ऐंग्लो वैदिक कॉलेज से बीए पास किया और वे उसे नौकरी के लिए एक आर्य समाजी नेता के पास लेकर गये तो उनका कहना था : 'मैं नहीं चाहता, अछूत चौथी-पाँचवीं कक्षा से अधिक पढ़े। हमारे अपने लड़कों को ही नौकरियाँ नहीं मिलतीं, हम इनको कहाँ से नौकरी दें?' संतराम यह सुन कर बहुत दुखी हुए और लिखा : 'डॉ आम्बेडकर का द्विज हिंदुओं पर से जो विश्वास उठ गया है, उसका एक बड़ा कारण अधिकांश द्विजों की यही दूषित और संकीर्ण मनोवृत्ति है।'[79] संतराम-आम्बेडकर के बीच लगातार पत्र-व्यवहार रहा और एक आदान-प्रदान में आम्बेडकर ने यह लिखा :

> मैं जाति प्रथा तोड़ने के आपके प्रयासों की सराहना करता हूँ। पर मुझे यह कहने की अनुमति दीजिए कि मैं इस समस्या पर हमला करने के आपके तरीक़े से सहमत नहीं हूँ। मुझे यह समझ नहीं आता है कि आप उन धार्मिक अवधारणाओं का उन्मूलन किये बग़ैर जाति का ख़ात्मा कैसे करेंगे जिस पर जाति व्यवस्था आधारित है। मैं अभी अपना तर्क विकसित नहीं कर सकता हूँ। ... साथ ही मैं यह आप पर छोड़ता हूँ कि आप इस सवाल से जैसे चाहें वैसे जूझें।[80]

यह भी उल्लेखनीय है कि संतराम आम्बेडकर के अभिभाषण के प्रशंसक भी थे और यह बात उन्होंने गाँधी को लिखे एक पत्र में कही भी, जो *हरिजन* में 15 अगस्त 1936 को प्रकाशित हुआ। संतराम ने आगे लिखा : 'जहाँ तक मेरा ज्ञान है, वह (*ऐनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट*) इस विषय पर सर्वाधिक विद्वत्तापूर्ण प्रबंध है और इस योग्य है कि भारत की प्रत्येक भाषा में इसका अनुवाद हो।'[81] संतराम ने हिंदी में पहली बार *ऐनिहिलेशन ऑफ़ कास्ट* का अनुवाद *जातिभेद का उच्छेद* नाम से किया और उसे जात-पाँत तोड़क मण्डल की ओर से प्रकाशित किया।[82] उन्होंने अपनी पत्रिका *क्रांति* में इसे उर्दू में भी प्रकाशित किया।[83] संतराम की एक निरंतर समस्या थी हिंदू रूपकों और मुहावरों पर उनकी सतत निर्भरता और अंतर्जातीय विवाह के क्षेत्र में भी द्विजों का सहारा। फिर भी, आज संतराम का लेखन उदारतावादी आर्य समाजियों की तुलना में दलितों के बीच कहीं ज़्यादा स्वीकार्य है, यद्यपि उनके व्यापक इतिहास को लगभग भुला दिया गया है। संतराम कोई मंगू राम या आम्बेडकर नहीं थे, फिर भी अपने जीवन और समय के बारे में उनका कथन हमें जाति के आधुनिक इतिहास के बारे में काफ़ी कुछ बताता है। वे एक उदारतावादी प्रत्यय और एक मध्यमार्गीय सोच के प्रतीक थे— कभी अपने समय से संचालित, तो कभी अपने समय से आगे देखने वाले। दलित लेखक धर्मवीर लिखते हैं कि संतराम 'के विचार एकदम ठीक थे लेकिन वे हमेशा ग़ैरों के बीच रहे। उन्हें अपने विचारों के अनुकूल अपनी उठ-बैठ ढूँढ़नी चाहिए थी। उन का पूरा हिंदू वातावरण उनके विचारों के लिए असहज था। ... वे अपने अंतर्मन में हिंदू-जाल से उभर नहीं सके। ... उनके दु:ख सच्चे हैं लेकिन उन के समाधान कच्चे हैं।'[84] धर्मवीर का लेख समृद्ध होते हुए भी अंतर्जातीय विवाह पर संतराम के विचारों को लेकर चुप है, जो संतराम के चिंतन का केंद्र था। मेरा मानना है कि अंतर्जातीय विवाह के बारे में संतराम की समझ शायद जाति-विरोधी राजनीति की सबसे प्रमुख विरासत है। साथ ही यह उनके परस्पर विरोधाभासी आग्रहों— पवित्र और सेकुलर, धार्मिक और आधुनिकता के मेलजोल को भी सामने लाती है। इसकी चर्चा मैं आगे करूँगी।

---

[79] वही : 223-4.

[80] बी.आर. आम्बेडकर (1935).

[81] संतराम (1963): 221.

[82] संतराम बीए (1937)(अनु.).

[83] क्षीरसागर (1994) : 323.

[84] धर्मवीर (2008) : 178-80.

विजय कुमार एम.ए. (वैश्य) और चाँद रानी बीए (ब्राह्मण) के बीच जात-पाँत तोड़क मण्डल द्वारा किया गया अंतर्जातीय विवाह। संतराम बाईं ओर.
साभार : मधु चड्ढा

अतिक्रमण करती अंतरंगता : अंतर्जातीय विवाह, सेक्स और संतराम

अंतर्जातीय विवाह का समर्थन करते हुए संतराम ने लिखा : प्रेम न देखे जात-कुजात / भूख न देखे जूठा भात / नींद न देखे टूटी खाट।[85] एक अन्य स्थान पर अंतर्जातीय प्रेम को क़ायम करते हुए वे कहते हैं :प्यार किसी को किया नहीं जाता / प्यार किसी पर हो जाता है / नयनों की खिड़की से सुंदर / कोई ज्यों ही मुस्कराता है।[86]

रोटी-बेटी की वर्जनाएँ जाति प्रथा के स्थानिक और शारीरिक भेदभाव में केंद्रीय हैं। सगोत्रीय विवाह जाति का एक मूल आधार है जो स्त्री के शरीर पर जाति का घनघोर दबदबा दिखाता है। स्त्री-पुरुष विवाह के पारम्परिक दायरों में बँधे रहने के बावजूद अंतर्जातीय विवाहों में रोज़ाना का पुलिसिया पहरा और हिंसा उजागर होती है जिसे फ़ूको के शब्दों में 'लैंगिकता का गठजोड़ मॉडल'[87] कहा जा सकता है : शादियों की ऐसी व्यवस्था जिसमें धर्म एवं जाति की सीमाओं का पहरा लगा होता है। दलित धर्मांतरणों को लेकर बढ़ती चिंता और भय के कारण आर्य समाज और हिंदू महासभा दिखावटी और बाहरी तौर पर अंतर्जातीय विवाह का समर्थन करने के लिए मजबूर हुए। इसके अलावा,1932 का प्रस्तावित साम्प्रदायिक अधिनियम दलितों को अलग प्रतिनिधित्व देने का वादा करता था जो हिंदू महासभा और द्विज राष्ट्रवादी राजनीति के लिए ख़तरे का संकेत था। इसी परिप्रेक्ष्य में हिंदू महासभा ने 1935 में पूना में अपने सत्रहवें अधिवेशन में यह प्रस्ताव पारित किया कि हिंदू समाज में अंतर्जातीय विवाह को पूर्ण समर्थन और स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।[88] पर इस सवाल को लेकर ज़मीन पर गहरा विवाद और बेचैनी व्याप्त थी क्योंकि ज़्यादातर सुधारक यौनिकता और विवाह के सवाल पर संकीर्ण नज़रिया ही रखते थे।[89] यह उल्लेखनीय है कि आम्बेडकर अंतर्जातीय विवाह को दलित उन्नति का प्रतीक और जाति के विनाश का एक महत्त्वपूर्ण समाधान मानते थे

[85] संतराम बीए (1959) : 31.
[86] संतराम, वही : 32.
[87] मिशेल फ़ूको (1978) : 106-11.
[88] हिंदू महासभा के दस्तावेज़.
[89] चारु गुप्ता (2016) : 77-83.
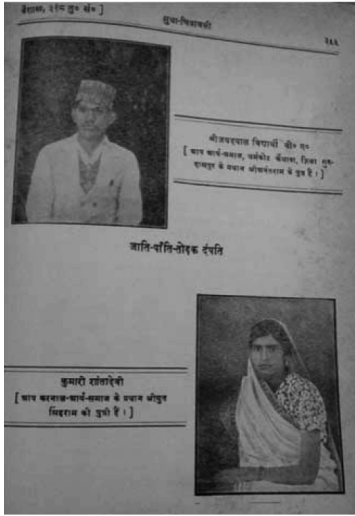
जात-पाँत तोड़क मण्डल द्वारा *सुधा,* मई 1941 : 399 में प्रकाशित ऐसे दम्पती का एक चित्र

क्योंकि इससे जाति की 'पवित्रता' को बरक़रार और स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित करने वाली व्यवस्था को गहरी चुनौती मिलती थी।[90]

संतराम को अंतर्जातीय विवाह संबंधी अपने विमर्श में जाति, लिंग, यौनिकता, प्रेम और कामना को एक साथ जोड़कर इसे जाति-विरोधी अभिव्यक्ति का एक महत्त्वपूर्ण वाहक बनाने का श्रेय जाता है। आम्बेडकर की शब्दावली अपनाते हुए उन्होंने यह तर्क दिया :

> जिस अस्पृश्यता को मानवता का कलंक कहा जाता है : वह जात-पाँत का अनिवार्य परिणाम है। कारण यह है कि जात-पाँत एक क्रमबद्ध अछूतपन है। ... और अंतर्जातीय विवाह से ही जातिभेद की समाप्ति हो सकती है।[91]

उन्होंने एक अन्य स्थान पर कहा :

> जात-पाँत में बेटी-बंदी ही नहीं, व्यवसाय-बंदी भी है। अर्थात् एक चमार यही नहीं कि एक ग़ैर-चमार से ब्याह-शादी ही नहीं कर सकता, वरन जूता बनाने के सिवा दूसरा कोई व्यवसाय करने का भी उसके लिए शास्त्रीय निषेध है।[92]

संतराम के नेतृत्व में जात-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना का स्वागत करते हुए *इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर* के सम्पादक ने ब्रह्म समाज और आर्य समाज जैसे सुधार आंदोलनों की सीमाओं की चर्चा की :

> आर्य समाज और अन्य संगठनों ने जाति व्यवस्था का गढ़ भेदने के लिए अंतर्जातीय खान-पान और अंतर्जातीय विवाह का आयोजन करने के लिए बेहद कम काम किया। ... ये आंदोलन समाज सुधारों के लिए मजबूती और स्पष्टता से सामने आने की बजाय, कट्टरपंथी प्रतिगामी हिंदूवाद के अंग बन गये। ... एक नयी जान भरने के मक़सद से हाल में जात-पाँत तोड़क मण्डल शुरू किया गया।[93]

जात-पाँत तोड़क मण्डल का पहला और प्रमुख नियम था जन्म आधारित जाति व्यवस्था तोड़ना और अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहित करना। संतराम की जाति आलोचना और जात-पाँत तोड़क मण्डल की गतिविधियों के पीछे यही केंद्रीय तत्त्व था। संगठन का नियम था कि केवल वही हिंदू मण्डल के सदस्य बन सकते हैं जो अपनी जाति में विवाह न करने की प्रतिज्ञा लें, साथ ही अपने

[90] शर्मिला रेगे (2013) : 59-64.
[91] संतराम (1959) : 23.
[92] संतराम (1959) : 4.
[93] संतराम (1923) : 320.

विवाह के बाद अपने बच्चों के लिए भी यही प्रतिज्ञा दुहराएँ। अंतर्जातीय विवाहों में सहायता देने के लिए जात-पाँत तोड़क मण्डल का एक अलग विभाग था। मण्डल के प्रयत्न से कई सौ जात-पाँत तोड़क विवाह हुए, जिनकी सूची मण्डल की *मधुर वीणा* नामक पुस्तिका में दर्ज की जाती थी।[94] 1939 में मण्डल की गतिविधियों की एक समीक्षा में कहा गया कि ऐसे विवाहों को जोड़ा जाए, तो यह संख्या निश्चित रूप से पाँच सौ होगी।[95] संगठन की सदस्यता और प्रभाव ज़्यादातर शहर आधारित और सीमित था, पर यह कई क्षेत्रों में फैला था और इसकी गतिविधियों का केंद्रीय तत्त्व था अंतर्जातीय विवाह। जात-पाँत तोड़क मण्डल के प्रभाव से इसी प्रकार की संस्थाएँ कई दूसरे स्थानों पर भी स्थापित हुईं, जैसे आंध्र में 'जातिभेद निर्मूलक मण्डल', पुणे में 'जाति-निर्मूलन संस्था' और कानपुर में 'अंतर्जातीय विवाह समिति'।[96]

अपनी आत्मकथा समेत कई लेखनों में संतराम अपने या संगठन के प्रयासों से सम्पन्न कई अंतर्जातीय विवाहों का उदाहरण देते हैं। पर ऐसा लगता है कि इनमें से ज़्यादातर शिखर के तीन वर्णों, कथित 'द्वि-जन्मी' जातियों से थे। संतराम यदा-कदा ही ऐसे उदाहरण देते हैं जहाँ मण्डल ने दलित पुरुषों और स्त्रियों का जात-पाँत तोड़ कर विवाह कराया।[97] अंतर्जातीय विवाहों के नाम पर ज़्यादातर समानांतर गठबंधनों को प्रोत्साहित किया गया। जैसे संतराम 1914 की एक घटना का हवाला देते हैं :

> पंडित भूमानंदजी हमारे मण्डल के प्रचारक बने। वे जन्म से ब्राह्मण थे। उनकी सगाई एक ब्राह्मण लड़की से हुई थी। फिर जब वे मण्डल में आये तो उन्होंने वह सगाई तोड़ दी। उसके बाद हमने उनकी सगाई मुल्तान की एक अरोड़ा लड़की से करायी। उनके विवाह में केवल मण्डल के ही लोग लाहौर से मुल्तान गये। भूमानंदजी के परिवार का कोई भी व्यक्ति विवाह में सम्मिलित नहीं हुआ। श्री भूमानंदजी ने बड़ा साहस दिखलाया।[98]

उस समय की प्रमुख हिंदी पत्रिकाओं में भी जात-पाँत तोड़क मण्डल ने इस प्रकार के अंतर्जातीय विवाहों का तस्वीरों द्वारा प्रचार किया।

संतराम को प्राय: ऐसे विवाह आयोजित कराने के लिए धमकियाँ भी मिलती थीं।[99] मुख्यत: इन प्रयासों के कारण ही अंतर्जातीय विवाह प्रगतिशील शहरी आधुनिकता का एक प्रतीक बन गया जो अभिजातों के एक छोटे समूह में जात-पाँत तोड़क मण्डल द्वारा संचालित था। यह निश्चित रूप से जाति तोड़ने का एक सद्प्रयास था, पर इसमें प्राय: 'ऊपर' से नज़रिया और नेतृत्व मिलता था— संतराम की सम्भावना और सीमा यहीं से ज़ाहिर होती हैं। फिर भी, यहाँ उल्लेखनीय है कि अपनी पहली पत्नी के निधन के बाद संतराम ने 1929 में स्वयं एक महाराष्ट्रीय ब्राह्मण विधवा सुंदर बाई प्रधान से विवाह किया। संतराम के मित्र भूमानंद ने कहा कि इस पुनर्विवाह से 'जात-पाँत भी टूटती है, विधवा विवाह भी होता है, और प्रांत-भेद भी दूर होता है।'[100] आम्बेडकर के दूसरे विवाह की तरह यह एक अंतर्जातीय प्रतिलोम विवाह भी था— एक शूद्र पुरुष और एक ब्राह्मण विधवा के बीच, जिसकी कट्टरपंथियों ने काफ़ी आलोचना की। साथ ही, अपनी लेखनी में संतराम अख़बारों और पत्रिकाओं से कई अंतर्जातीय विवाहों के उदाहरण देते थे, जैसे *दैनिक प्रताप*, जालंधर, में 26 सितम्बर, 1959 को ख़बर छपी कि रोपड़ में एक 23 वर्षीय ब्राह्मण लड़की ने एक हरिजन युवक के साथ विवाह किया। *वीर प्रताप*, जालंधर, ने दिनांक 6 अप्रैल 1959 को सूचित किया कि दिल्ली में एक खत्री

---

[94] संतराम (1963) : 188.

[95] *जात-पाँत तोड़क मण्डल, लाहौर : जेनेरल रिव्यू* (1939) : 4.; संतराम (1938) : 2.

[96] संतराम (1963) : 194.

[97] संतराम का श्याम लाल मनचंदा से साक्षात्कार : 23.

[98] संतराम का श्याम लाल मनचंदा से साक्षात्कार : 18-9. यह भी देखें : संतराम (1963) : 36.

[99] संतराम (1963) : 56-9.

[100] संतराम (1963) : 104.

लड़की ने एक वाल्मीकि (भंगी) से विवाह किया। साथ ही वे अंतर्धार्मिक विवाहों के भी उदाहरण देते हुए उनके प्रति अपना समर्थन व्यक्त करते थे।[101] एक प्रकार से अंतर्जातीय विवाह पर केंद्रित इस फ़ोकस से संतराम यह दर्शाने में सफल रहे कि जाति हमारे अंतरंग स्थलों में बसी है और इन्हीं स्थलों पर ही उसे सबसे ज़्यादा चुनौती देने की ज़रूरत है।

जाति को एक रोग बताते हुए संतराम ने कहा कि यह चार वर्जनाओं— स्पर्श-बंदी, व्यवसाय-बंदी, रोटी-बंदी और बेटी-बंदी पर टिकी है।[102] मनु पर निरंतर सवाल उठाते हुए और आम्बेडकर का समर्थन करते हुए उन्होंने बेहद संजीदगी से जाति उन्मूलन के केंद्र में अंतर्जातीय, अंतर्क्षेत्रीय और अंतर्धार्मिक विवाह को स्थान दिया। एक बार वैद्य हेमराज के साथ संतराम की मनु पर बहस हो रही थी। संतराम अपने साक्षात्कार में लिखते हैं—

> किसी बात को इसलिए ही सत्य नहीं मान लेना चाहिए कि वह किसी ग्रंथ में लिखी है या उसका प्रचार कोई संत महात्मा करता रहा है। बात अपनी बुद्धि से सोच कर देखनी चाहिए। यदि वह सत्य प्रमाणित हो तो माननी चाहिए। नहीं तो नहीं। मनु कोई निभ्रांत व्यक्ति नहीं था।' इस पर वैद्यजी बोले, 'क्या आप मनु से अधिक ज्ञानवान हैं?' मैंने कहा, 'हाँ। मनु को क्या पता था कि 'टेलीपैथी' क्या होती है, 'टेलिस्कोप' क्या होता है और रेल कैसे चलती है जबकि मुझे इन सब बातों का ज्ञान है। मनु कुछ था तो अपने ज़माने में होगा। इस वक़्त हमारा ज्ञान बहुत बढ़ चुका है।[103]

संतराम ने सगोत्रीय विवाह ख़त्म करने के लिए बहुपक्षीय तर्क दिये— एक तरफ़ धार्मिक, भक्तिपरक, शास्त्रीय, तो दूसरी तरफ़ सामाजिक, सेकुलर, आधुनिक, वैज्ञानिक और तार्किक विचार। प्राचीन धर्मग्रंथों से अंशतः उद्धृत करते हुए उन्होंने कई अवसरों पर अतीत में वर्ण-संकर— अनुलोम और प्रतिलोम विवाह के उदाहरण दिये। जैसे भीम ने हिडिम्बा से विवाह किया और घटोत्कच को जन्म दिया। प्रमता ब्राह्मणी का विवाह एक नाई के साथ हुआ। इनके पुत्र मत्तंग महामुनि थे। कर्दम ऋषि की कन्या अरुंधती और वेश्या के पुत्र वशिष्ठ मुनि का विवाह हुआ। उनके पुत्र का नाम शक्ति था जिसका विवाह चाण्डाल कन्या अद्रिश्यंति से हुआ। शक्ति के पुत्र पराशर एक महान ऋषि थे जिन्होंने एक मछुआरे की बेटी सत्यवती से शादी की— वे महाभारत के लेखक व्यास के पिता थे।[104] संतराम ने अपनी सूची में उन जाने-माने व्यक्तियों— गाँधी, परमानंद, नेहरू, गोकुल चंद और राजा नरेंद्रनाथ को शामिल किया जिन्होंने अंतर्जातीय/अंतर्क्षेत्रीय विवाह किया था और जिन्हें हिंदू समाज से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता था।[105] इस विचार को आगे बढ़ाते हुए वे सहज रूप से आधुनिक, वैज्ञानिक और सेकुलर धारा में शामिल होते थे जिसमें समानता और न्याय का भी आग्रह था। पॉल गिलरॉय अश्वेत आत्मकथा लेखक डगलस की चर्चा करते हैं, जो 'दासता के नैतिक अँधेरे में विवेक की रोशनी' लाए थे।[106] इसी लय-ताल में संतराम ने जाति के विरोध के लिए जागरूक आधुनिक विमर्श और तर्क मीमांसा का उपयोग किया। संतराम ने विचार प्रकट किया :

> मैं अनुभव करता था कि रामचंद्र, हरिश्चंद्र, कृष्ण, शिवाजी और प्रताप प्रभृति इतने हिंदू राजे-महाराजे हुए, क्या कभी किसी को भील, गोंड आदि अन्य जातियों और अछूतों और शूद्रों को पढ़ा-लिखा कर नागरिकता के पूर्ण अधिकार देने का विचार आया। अब ईसाई उनको पढ़ा-लिखा कर कम-से-कम सभ्य नागरिक तो बनाते हैं।[107]

---

[101] संतराम (1959) : 31-2.
[102] संतराम (1949) : 3.
[103] संतराम का श्याम लाल मनचंदा से साक्षात्कार : 7-8.
[104] संतराम (1949) : 11-5; संतराम (1959) : 13-4.
[105] संतराम बीए (1936).
[106] पॉल गिलरॉय (1993) : 59.
[107] संतराम (1963) : 213-4.
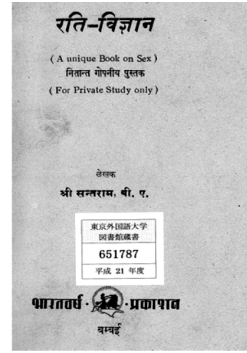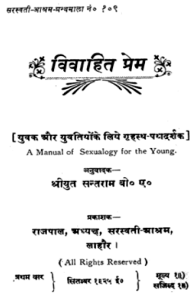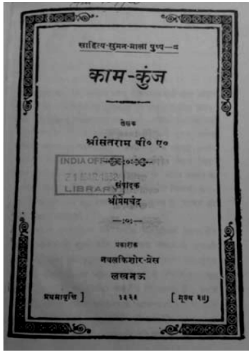
संतराम की कुछ यौन विषयक पुस्तकों के आवरण पृष्ठ

एक अन्य जगह पर उन्होंने गाँधी के वर्ण व्यवस्था संबंधी विचारों से अपनी स्पष्ट असहमति व्यक्त करते हुए कहते है : 'अस्पृश्यता और जातिभेद को दूर करने के लिए शास्त्रों की सहायता ढूँढ़ना कीचड़ को कीचड़ से धोने के सामान है'।[108] हिंदुओं की कटु आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा :

> मैं आज भी देखता हूँ, कोई हिंदू सोशलिस्ट बन जाए, कम्युनिस्ट बन जाए, कांग्रेसी बन जाए और चाहे सर्वोदय का प्रचारक हो जाए, वह बेटी-व्यवहार में जात-पाँत का ही पाबंद रहता है। वह केवल आर्थिक और राजनीतिक समता पर ही बल देता है, सामाजिक समता पर आँखें मींच लेता है।[109]

संतराम ने एक ख़ास भारतीय अंदाज़ में पश्चिमी उदारतावादी मॉडल अपनाया जिससे उन्हें एक नये प्रकार की 'स्व' जाति निर्मित करने में मदद मिली। संतराम प्राय: अपने विचारों के समर्थन में जर्मन-अमेरिकी मानव विज्ञानी फ्रांज़ बोआस जैसे विद्वानों को उद्धृत करते थे जो वैज्ञानिक नस्लवाद की विचारधारा के प्रमुख आलोचक थे। उन्होंने अन्य विचारकों जैसे हेवलॉक एलिस, विलियम केसल, गालटन, डेवन पोर्ट आदि का लगातार सहारा लिया।[110] इसके अलावा कई अन्य दलित पैरोकारों के सामान संतराम ब्रिटिश राज की चुनिंदा प्रशंसा भी करते थे। एक स्थान पर उन्होंने लिखा :

> अछूतों और शूद्रों के लिए अंग्रेज़ी राज्य सचमुच एक अपूर्व ईश्वरीय वरदान है। ... अंग्रेज़ी राज्य में शूद्रों को उन्नति के जितने सुयोग और सुविधाएँ उपलब्ध हैं उतनी न हिंदुओं के राज्य में कभी थीं और न हो सकती हैं। ... वे (अछूत) बड़े ही मूर्ख होंगे यदि वे अंग्रेज़ी राज के बजाय हिंदू बहुसंख्या का राज्य पसंद करेंगे।[111]

'विभिन्नता' और 'समरूपता' के विभिन्न विमर्शों और अर्थों की सीमाओं से सचेत संतराम ने एकरूपता, एकता, स्व-सामर्थ्यता, स्व-ज्ञान, एक पहचान और विभाजित दृष्टि की अवधारणाओं का मूल्यांकन किया। उन्होंने 'वर्ण संकरता' के गुणों पर ज़ोर दिया जो उनके अनुसार एक मज़बूत और ज़्यादा सृजनात्मक तीसरे पक्ष को जन्म देता है। उनका कहना था :

> विज्ञान का एक सर्वमान्य सिद्धांत है कि जितने एक-दूसरे से अधिक भिन्न दो पदार्थों का आपस में संयोग होगा उनके मिलाप से उतना ही अधिक अच्छा नया पदार्थ बनेगा। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन नाम के दो बिल्कुल विभिन्न गुणों वाली गैसों के संयोग से जल का उत्तम पदार्थ बनता है। ... घोड़ा और गधा दो विभिन्न जातियों के जीव हैं। इसलिए उनके संयोग से जो खच्चर उत्पन्न होता है यह उन दोनों से अधिक मज़बूत और बलवान होता है।[112]

---

[108] संतराम बीए (1936), 15 अगस्त .
[109] संतराम (1963) : 225.
[110] संतराम (1949) : 133-47.
[111] संतराम (1963) : 208.
[112] संतराम (1959) : 1-2.

उनका तर्क था कि सगोत्रीय विवाह एक कमतर प्रकार का विवाह है। साथ-ही-साथ, उनका यह भी ज़ोर था कि एक ब्राह्मण के दिमाग़ और बुद्धिमानी और एक क्षत्रिय की शारीरिक ताक़त के बीच मेल-जोल से बेहतर संतान पैदा होगी। संतराम के विचारों में ही उनकी सीमाएँ निहित हैं क्योंकि वे कई बार विभिन्न वर्णों के बारे में बने-बनाए साँचे और निर्धारित समझ को ही पुष्ट करते हैं। उन्होंने लिखा :

> अपनी-अपनी संकुचित जाति-बिरादरी के भीतर ही विवाह करते रहने का कुफल यह हुआ है कि मनुष्य को पूर्ण मनुष्य बनाने वाले सद्गुण अलग-अलग जातियों में पूँजीभूत हो गये हैं। ब्राह्मण बुद्धिमान तो है पर साथ ही वृथाभिमानी भी है। क्षत्रिय वीर तो है पर साथ ही अदूरदर्शी भी। वैश्य व्यापार-कुशल तो है पर साथ ही कायरता की सजीव प्रतिमा भी। शूद्र परिश्रमी तो है, पर साथ ही उसकी आत्मा इतनी कुचली हुई है, उसकी उमंग इतनी दबी हुई है कि उसमें वह मानवी प्रतिष्ठा ही नहीं रह गयी जिसके बिना यह जीवन दूभर मालूम होने लगता है।[113]

उन्होंने राष्ट्रीय संवृद्धि, विकास, उन्नति, पौरुष और ख़ास कर सज्जनता के विचारों को स्वीकार कर अंतर्जातीय विवाहों की वकालत की जिसके अनेकार्थ और संदिग्ध परिणाम थे। पुरुषत्व की कमी, कमज़ोरी, बुद्धिमत्ता का निम्न स्तर, अतीत के युद्धों में हिंदुओं की लगातार पराजय, अस्वस्थ वंश, कमज़ोर राष्ट्र— इन सबको सगोत्रीय विवाह का दुष्परिणाम बताया। इसके विपरीत, संतराम के अनुसार, अंतर्जातीय विवाहों से मज़बूत, स्वस्थ और तेजस्वी संतानें होती हैं, रोज़गार में विविधता आती है, पौरुष बल में इज़ाफा होता है और कुल मिला कर हिंदुओं की उन्नति होती है।[114] सहजता, समानता, उन्नति, आजादी, आधुनिकता और विवेक संतराम के विवरणों में हिंदू धार्मिकता, परम्परागतता और हिंदू केंद्रित सोच के साथ मिले-जुले हैं— ये सभी पक्ष भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच एक पेण्डुलम की तरह गतिमान रहते हैं।

संतराम अपने तर्कों में जाति-सत्ता का खण्डन करते हैं, लेकिन साथ ही अनायास ढंग से बने-बनाए साँचों और पितृसत्ता का भी समर्थन कर जाते हैं। एक स्थान पर वे कहते हैं : 'वैज्ञानिकों का मत है कि जात-पाँत तोड़क विवाहों से प्रायः लड़कियों की अपेक्षा लड़के ही अधिक उत्पन्न होंगे।'[115] एक बार आर्य समाज, लाहौर के वार्षिक सम्मेलन में संतराम और गुरुकुल कांगड़ी के शिक्षक रामदेव के बीच वर्णव्यवस्था पर विवाद चल रहा था— रामदेव व्यवस्था के समर्थक और संतराम उसके कट्टर विरोधी। संतराम ने हलके अंदाज़ में कहा :

> आप लोग कहते हैं कि सब लोगों पर 'वर्ण' का लेबल लगाया जाय और एक ही लेबल वाले स्त्री-पुरुषों का अर्थात् सवर्ण विवाह हो। ... पर मान लीजिए, पति और पत्नी दोनों एक ही वर्ण के हैं, दोनों क्रोधी एवं झगड़ालू हैं। एक ही गुण, कर्म, स्वभाव के हैं, तो उनके घर में सदा झगड़ा रहेगा। ... इसलिए सवर्ण विवाह अहितकर है।[116]

उनकी दोहरी और विरोधाभासपूर्ण भाषा और शब्दावली कई बार प्रकारांतर से उल्टा असर डालती थी। प्रसिद्ध पत्रिका *सुधा* में प्रकाशित अपने एक लम्बे लेख में संतराम अंतर्जातीय विवाह के ख़िलाफ़ तमाम आपत्तियों का जवाब देते हैं। वे कहते हैं कि एक अमृतलाल राय का कहना है कि अंतर्जातीय विवाह से गुप्त यौनिक संबंध, रोमांस और घरेलू नौकरानी या निम्न जातीय पुरुष के साथ सम्पर्क बढ़ेगा। संतराम एक संरक्षक की तरह जवाब देते हैं कि एक दासी भी 'रूपवती, गुणवती और सदाचारिणी' हो सकती है और कई चमार स्त्रियाँ आकर्षक और गोरी होती हैं। वे इस तर्क का तिरस्कार करते हैं कि ऐसे मेलजोल से स्त्री की पवित्रता और सम्मान का महती आदर्श नीचा होगा।[117] लेकिन

---

[113] संतराम (1949): 193-4.
[114] संतराम (1959) : 3, 6.
[115] संतराम (1959) : 11.
[116] संतराम (1963) : 199-201.
[117] संतराम बीए (1929) : 596-608.

साथ-ही-साथ, अंतर्जातीय विवाहों पर अपने विचारों के ज़रिये उन्होंने न केवल जाति वर्गीकरण बल्कि पितृसत्तात्मक वर्चस्व को चुनौती भी दी। उन्होंने ज़ोर देकर कहा :

> जात-पाँत से स्त्री जाति को घोर हानि हुई है। कई बिरादरियों में लड़के कम और लड़कियाँ अधिक हैं ... वहाँ लड़की वालों को भारी दहेज़ देने पड़ते हैं। ... जिन बिरादरियों में लड़के अधिक और लड़कियाँ कम हैं वहाँ लड़कियाँ मोल बिकती और व्यभिचार फैलता है। बुड्ढों के साथ अल्पवयस्क कन्याएँ ब्याही जाती हैं। ... जात-पाँत ने लड़की की स्वतंत्र सत्ता न रहने देकर उसे एक माल बना दिया है।[118]

संतराम स्त्री की इच्छाओं पर पहरेदारी बिठाने की आलोचना करते थे। उन्होंने इस प्रवृत्ति पर भी सवाल उठाए कि स्त्रियों के ठठा कर हँसने या रात में बाहर जाने पर उन्हें संदेह की निगाह से क्यों देखा जाता है। उन्होंने स्त्री की शुचिता के बारे में मिथ्या समझ के प्रचार-प्रसार के लिए *रामायण* को दोषी क़रार किया।[119] एक अन्य स्थान पर संतराम ने सतीत्व की सुरक्षा के नाम पर जौहर प्रथा का विरोध करते हुए कहा कि यह प्रथा पहले दर्जे की मूर्खता दर्शाती थी।[120] सगोत्रीय विवाह को किसी भी प्रकार से सकारात्मक, स्थायी या अच्छा समझने की सोच पर सवाल उठाते हुए संतराम ने अंतर्जातीय विवाह को ज़्यादा सार्थक, अर्थवान और सुदृढ़ क़रार किया।

इसके साथ-साथ यह भी दर्ज किया जाना चाहिए कि जाति के विरुद्ध और अंतर्जातीय विवाह के समर्थन में संतराम के अग्रणी कार्य को उनके सेक्स संबंधी विपुल लेखन से अलग नहीं किया जा सकता। संतराम ने हिंदी में सेक्स और जन्म नियंत्रण पर कई लेख और पुस्तकें प्रकाशित कीं। उन्होंने पहली बार 1920-30 के दशक में प्रसिद्ध डॉ. मैरी स्टॉप्स की किताबों और संस्कृत के सेक्स संबंधी उत्कृष्ट साहित्य का हिंदी अनुवाद भी किया। स्टॉप्स से गहरे प्रभावित संतराम ने उनकी कई प्रसिद्ध और लोकप्रिय किताबों का पहली बार हिंदी में अनुवाद किया। जैसे स्टॉप्स की सबसे प्रसिद्ध किताब *मैरिड लव : अ न्यू कंट्रीब्यूशन टू द सौलुशन ऑफ़ सेक्शुअल डिफ़ीकल्टीज़* को संतराम ने *विवाहित प्रेम* के नाम से प्रकाशित किया,[121] जिसका बाद में एक अन्य संस्करण *प्रेम विवाह* के नाम से प्रकाशित हुआ। एक अन्य रचना *कंट्रासेप्शन* को संतराम ने दिलचस्प नाम *संतान संख्या का सीमा बंधन अर्थात् दम्पति मित्र* के नाम से प्रकाशित किया।[122] स्टॉप्स की रचना *एंड्यौरिंग पैशन* को *रति विलास* नाम से अनूदित किया।[123] इसके अलावा उन्होंने काम संबंधी आनंद जैसे विषय पर भी पुस्तकें प्रकाशित कीं जो संस्कृत के उत्कृष्ट सेक्स साहित्य जैसे वात्स्यायन के *कामसूत्र,* कोका के *रति रहस्य,*[124] पद्मश्री के *नागर सर्वस्वं,*[125] फ्रॉयड और स्टॉप्स की रचनाओं के अंश और इस विषय पर संतराम के अपने विचारों का संकलन था। इस क्रम में उनकी कई और किताबें भी आयीं, जैसे *रति विज्ञान* जो न केवल निर्देशात्मक है बल्कि उत्तेजक भी है;[126] *काम-कुञ्ज*— स्त्री और पुरुषों के लिए एक सेक्स निर्देशिका— जिसे लखनऊ के प्रतिष्ठित नवल किशोर प्रेस ने प्रकाशित किया;[127] *आदर्श पत्नी*— एक किताब जो स्त्रियों को प्यार और सेक्स समेत कई मुद्दों पर सलाह देती है;[128] और *आदर्श*

---

[118] संतराम (1959) : 17-9.
[119] संतराम (1949) : 97-100.
[120] संतराम (1963) : 200.
[121] संतराम बीए (1925). ये भी देखें : *नये वर्ष का सूचीपत्र,* लाहौर : 44. कोई तारीख़ नहीं.
[122] संतराम बीए (1926). यह भी देखें, : राजेंद्र जिज्ञासु (1998) : 53. ; *नये वर्ष का सूचीपत्र* : 43. ; संतराम (1963) : 132, 161.
[123] संतराम बीए (1931).
[124] एक मध्ययुगीन भारतीय यौन संबंधी ग्रंथ.
[125] एक बौद्ध विद्वान पद्मश्री द्वारा लगभग 1000 ईस्वी में लिखा गया एक कामशास्त्रीय ग्रंथ.
[126] संतराम बीए (1950). ; यह भी देखें, रामनारायण टंडन (1951) : 307.
[127] संतराम बीए (1929). प्रेस के बारे में अधिक जानकारी के लिए देखें, उलरिक स्टार्क (2007).
[128] संतराम बीए (1924). ; संतराम (1963) : 111.

पति जो इसी प्रकार पुरुषों को सलाह देती है।[129] संतराम ने तत्कालीन स्त्रियों की एक अग्रणी पत्रिका *माधुरी* में सेक्स विज्ञान के प्रकाशन के समर्थन में कई लम्बे लेख भी लिखे जिनमें उनकी अपनी सेक्स निर्देशिकाओं का प्रचार भी निहित था।[130]

इन पुस्तकों में संतराम ने उस दौर में यौन आनंद की कल्पना करने का साहस दिखाया जब इसे तुच्छ और हीन माना जाता था। ख़ासकर, समाज सुधारकों, राष्ट्रवादियों, हिंदू साहित्यकारों और ब्रिटिश अधिकारियों का एक बड़ा तबक़ा इस विषय को संदेह की दृष्टि से देखता था; साथ ही आमतौर पर ऐसी किताबों पर अश्लीलता के आरोप भी लगाए जाते थे।[131] अश्लीलता के आरोपों का खण्डन करते हुए संतराम ने लिखा :

> अनेक लोग कामशास्त्र का नाम सुनते ही, अपनी झूठी धार्मिकता और पवित्रता का आडम्बर खड़ा करने के लिए, नाक-भौं चढ़ाते हुए छी: छी: करने लगते हैं। इस प्रकार पवित्रता का प्रमाणपत्र मिलना है भी बहुत सुगम। परंतु यदि तनिक विचार से काम लिया जाए तो मालूम होगा कि कामशास्त्र संबंधी किसी पुस्तक को अश्लील ठहराने में केवल उनका भाव काम करता है, इसमें बुद्धि का कुछ भी प्रवेश नहीं होता। ... जिस चीज़ की आवश्यकता को बुद्धि या प्रयोजन स्वीकार करता है वह अश्लील नहीं हो सकती। देशाचार उसे चाहे अस्थायी रूप से अश्लील ठहरा दे, परंतु विज्ञान के सामने देशाचार की मृत्यु हो जाती है, और जिस चीज़ की आवश्यकता का अनुभव बुद्धि और प्रयोजन करता है वह गर्हित नहीं ठहराई जा सकती।[132]

संतराम का पक्का विश्वास था की सेक्स और वैवाहिक ज़िंदगी में कामुकता की गूढ़ताओं पर खुलकर बातचीत करनी चाहिए क्योंकि सेक्सजनित आनंद आधुनिक वैवाहिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। उन्होंने तर्क दिया :

> कामशास्त्र आजकल बहुत बदनाम हो चुका है। ... इस बात को जानते हुए भी मैं एक ऐसी पत्रिका में इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने का साहस करने लगा हूँ जिसे स्त्रियाँ भी पढ़ती हैं। इसका कारण यही है कि मैं इस शास्त्र को अश्लील नहीं समझता। ... प्रत्येक हृदय अपने लिए जोड़ीदार चाहता है। ... कामशास्त्र का उद्देश्य विवाह के आनंद को बढ़ाना और शोकों को दूर करने की विधि बताना है। ... एक बात बड़े मज़े की है। जो कार्य स्वयं अश्लील या बुरा नहीं समझा जाता, उसके शास्त्रीय वर्णन को अश्लील ठहराया जाता है। आलिंगन, चुम्बन और आसन मैथुन के लिए आवश्यक हैं। जो लोग विवाहित हैं, वे सब ये क्रियाएँ करते हैं, क्योंकि भगवान ने मनुष्य की उत्पत्ति के लिए इसी 'अश्लील' विधि का विधान किया है। फिर क्यों नहीं विधाता पर भारतीय दंड विधान की धारा 292 तथा 293 के अनुसार अभियोग चला दिया जाता?[133]

एक साक्षात्कार में उन्होंने खुलेआम स्वीकार किया कि वे सेक्स संबंधी किताबों के उत्साही और नियमित पाठक हैं : 'मुझे भी उन दिनों यौन संबंधी पुस्तकें पढ़ने का शौक था। मुझे लाजपतराय की लाइब्रेरी में यौन संबंधी बहुत अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़ने को मिलीं।'[134] उन्होंने काव्यात्मक रूप से घोषणा की : 'काम वह वस्तु है जिसके बिना मनुष्य का जीवन नीरस ... है। इसके बिना कवियों के काव्य फीके, लेखकों के लेख नीरस और सम्पार के व्यवहार शुष्क हैं।'[135] सेक्स-विज्ञान पर उनकी पुस्तकें प्राय: सेक्स विज्ञान, कामोत्तेजक कला और अश्लीलता के बीच की विभाजन रेखा मिटाती हैं। संतराम विविध मुक़ामों के बीच सफ़र करते रहते हैं— एक ओर वे कामशास्त्र के शास्त्रीय साहित्य

---

[129] संतराम बीए (1932).
[130] संतराम (1924) : 601-5; संतराम (1923) : 789-95.
[131] चारु गुप्ता (2012) : 37-62.
[132] संतराम (1950) : 28, 31.
[133] संतराम (1929) : 160-7.
[134] संतराम का श्याम लाल मनचंदा से साक्षात्कार : 29.
[135] संतराम (1950) : 3.

से प्रेरणा लेते हुए उसे सेक्स विज्ञान के लिए उपयोगी कहते हैं, तो दूसरी ओर वे पश्चिमी सेक्स विशेषज्ञों और सुजनन संबंधी तर्कों की मदद लेते हुए आनंद और इच्छा को आधुनिक सेक्स जीवन का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बताते हैं। इस प्रकार वे एक संकरित सेक्सशास्त्र प्रस्तावित करते हैं जो पश्चिमी सुजनन अवधारणाओं और आधुनिक बुद्धिवादी सेक्स विज्ञान के साथ भारतीय शास्त्रीय सेक्स विचारों का संगम है। उनके अनुवाद केवल भाषांतर नहीं थे, बल्कि उनमें सेक्स के बारे में वर्चस्वशाली और नियामक अवधारणाओं पर अप्रत्यक्ष रूप से सवाल उठाए गये थे। अपने लेखों के ज़रिये संतराम ने सेक्स संबंधों की सराहना करने के लिए एक अंतरंग-स्थानिक जगह बनाई— उन्होंने स्पर्श, लैंगिक संबंध, प्यार, आंतरिकता, रूपांतरकारी सेक्स मापदण्ड के नए रास्तों और गलियों का निर्माण किया।

सेक्स और लिंग के सवालों पर संतराम प्रायः अपने समय से आगे थे। वे स्त्री और पुरुष, दोनों के सेक्स आनंद के पक्के समर्थक थे, ब्रह्मचर्य के घोर विरोधी और जन्म-नियंत्रण के हिमायती। पुरुष की सेक्स दुश्चिंताओं और स्त्री की यौनेच्छाओं को सम्बोधित करते हुए उन्होंने सेक्स मुद्दों के बारे में पुरुषों की अनभिज्ञता की आलोचना की, साथ ही स्त्रियों को एक सक्रिय सेक्स भागीदार मानने पर ज़ोर दिया।[136] पुरुषों को सम्बोधित करते हुए अपनी पुस्तक *आदर्श पति* में संतराम ने विभिन्न स्थानों पर लिखा :

> जो पुरुष स्त्री को कठोरता से वश में करना चाहता है : वह मूर्ख है। ... प्रत्येक बात में अपनी ऐंठ न दिखलाओ। घर में केवल तुम्हीं बुद्धिमान नहीं। ... जहाँ तुम्हारा और तुम्हारी पत्नी का मतभेद हो वहाँ उसकी बात को मान लेना अपना अपमान मत समझो। ... पत्नी को ...परदे में बंद रखने का यत्न मत करो। ... पत्नी को फ़िल्में और नाटक दिखाओ।[137]

स्टॉप्स को अनुवाद करते हुए वे एक पाद-टीका में कहते हैं :

> चतुर पुरुष को चाहिए कि सुहाग-रात में प्रेमालाप, आलिंगन, और चुम्बन आदि बाह्य रति के द्वारा स्त्री में काम का उद्दीपन करे। जब उसके अंदर कामेच्छापूर्ण रूप से उत्तेजित हो जाए तब ही रमण करे। जो पुरुष काम के वशीभूत होकर स्त्री पर एकदम टूट पड़ता है वह मूर्ख है।[138]

अपने विचारों को मज़बूती देने के लिए उन्होंने स्त्री अधिकारों की प्रबल समर्थक मैरी वोल्सटनक्राफ़्ट को उद्धृत क्या।[139] उन्होंने घोषणा की : 'विकासवाद की दृष्टि से सम्पार में सबसे अधिक विकसित देहधारी स्त्री है। इंद्रियाँ जितनी नारी के शरीर में विशेषत्व को प्राप्त हैं, उतनी नर शरीर में नहीं'।[140] उन्होंने पूरी शिद्दत से ब्रह्मचर्य पर हमला किया जिसने संतराम के अनुसार उन्हें व्यक्तिगत रूप से काफ़ी नुकसान पहुँचाया था। उनका कथन था :

> आर्य समाज के प्रभाव में मैं ब्रह्मचर्य पालन को बहुत महत्त्व देता था। ... इससे मेरी स्त्री भी दुखी रहती थी। ... परंतु इस कथित ब्रह्मचर्य से लाभ की अपेक्षा मुझे हानि अधिक हुई। ब्रह्मचर्य की मेरी कल्पना अशुद्ध थी। बाद में मैरी स्टॉप्स की पुस्तक *एंड्यौरिंग पैशन* पढ़ने से मुझे बहुत लाभ हुआ।[141]

उन्होंने स्टॉप्स के साथ व्यक्तिगत पत्रों का आदान-प्रदान किया— अपने जीवन की अंतरंग बातें बताते हुए और उनकी सलाह माँगते हुए।[142] संतराम जन्म नियंत्रण के भी पुरज़ोर समर्थक थे— एक ओर स्टॉप्स से जुड़ते हुए तो दूसरी ओर पेरियार से प्रभावित। संतराम ने 1926 में मैरी स्टॉप्स की *कंट्रासेप्शन* का अनुवाद करते हुए उसे 'विवाहित दम्पतियों का मित्र' कहा। चित्रों समेत यह तीन सौ पृष्ठों की किताब थी। यह

---

[136] संतराम (1929) : 1, 160-1; (अनु.) संतराम (1925).
[137] संतराम (1932) : 5-6, 21, 47, 69.
[138] संतराम (1925) (अनु.) : 33. पाद-टीका.
[139] संतराम (1929) : 171.
[140] संतराम, वही : 152.
[141] संतराम (1963) : 85.
[142] संतराम द्वारा मैरी स्टॉप्स को लिखा एक ख़त, तारीख़ 16 मार्च 1930, एम.एस.एस. संख्या 58578, स्टॉप्स डॉक्यूमेंट्स, पाण्डुलिपि विभाग, ब्रिटिश पुस्तकालय, लंदन में उपलब्ध है.

सम्भवतः भारत में हिंदी में परिवार नियंत्रण पर पहली पुस्तक थी। जन्म नियंत्रण के विभिन्न तरीक़ों का खुला सुझाव देते हुए पुस्तक में अवांछित गर्भधारण रोकने के कई उपाय बताए गये हैं। वे सुजनन के तर्कों से प्रभावित थे, पर उन्होंने मुख्यतः स्त्रियों को जन्म नियंत्रण की एजेंसी और अधिकार दिया। इस पुस्तक को लेकर गम्भीर विवाद शुरू हुआ और आर्य समाज के सदस्यों समेत कई लोगों ने इसे 'अनैतिक' और 'अश्लील' क़रार किया और संतराम को मुक़दमे की धमकी दी। पर कइयों ने उन्हें इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए धन्यवाद किया।[143] संतराम का कहना था :

> मैंने अंग्रेज़ी पुस्तक *कंट्रासेप्शन* का भी अनुवाद 1923 में *दम्पति मित्र* नाम से किया। इसमें गर्भ-निरोध की विधियाँ बताई गयी थीं। कुछ लोगों ने इसकी बहुत निंदा की और इसे अश्लील बता कर अभियोग चलाने की धमकी दी। ... पुस्तक के प्रकाशक मेरे मित्र श्री राजपाल ने मुझे बताया कि जो घोर आर्य समाजी इस पुस्तक के कारण आपकी निंदा करते और न्यायालय में घसीटने की धमकी देते हैं, उनकी पत्नियों ने इसे गुप्त रूप से ख़रीद कर पढ़ा है।[144]

संतराम इस प्रकार एक विरोधाभासी सामाजिक मुक़ाम पर खड़े होते हैं— कुछ मामलों में हिंदू धर्म को एक विशेषाधिकार के रूप में अंगीकार करना, और अन्य में उसका तिरस्कार करना। उन्होंने साथ ही साथ दो तर्कधाराओं से अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया— पहले में धर्मग्रंथीय और वेदांती शब्दावली है, तो दूसरे में आधुनिकता, सुजननता, राष्ट्र, समानता और समाधिकार के तर्क हैं। संकर तरीक़ों के ऐसे कुशल उपयोग से, जिसमें उन्होंने विविध अभिव्यक्तियों के ज़रिये अंतर्जातीय विवाह के विभिन्न प्रकार और सम्भावनाएँ व्यक्त की, अस्पष्ट और संदिग्ध प्रभाव थे। एक तरफ़ तो उन्होंने विभिन्न वर्णों और स्त्रियों के निश्चित, निर्धारित विशेषताओं के बारे में व्याप्त समझ की आलोचना की तो दूसरी तरफ़ स्वस्थ वंश, विभिन्नता और शक्तिशाली राष्ट्र के बारे में उनकी समझ से हिंदुत्व और पितृसत्ता को बल मिलता था। लेकिन, इसके साथ उनका यह विश्वास भी गुँथा हुआ था कि अंतर्जातीय विवाह की संतान न केवल माता-पिता, दोनों के गुणों की वाहक होती है और जाति के स्थापित ढाँचे में नहीं पटी होती, बल्कि एक तीसरी, अलग पहचान स्थापित करती है।

सेक्स-विज्ञान पर संतराम के विविध लेखन को यदि अंतर्जातीय विवाह पर उनके विचारों के साथ जोड़ कर देखा जाए, तो इससे हमें सेक्स अनुराग, हठी प्यार और अंतरंगता की शब्दावली मिलती है— यह लैंगिक संबंधों की भी पुनर्रचना करती है। सगोत्रीय विवाह के तोड़-मोड़ से जाति विभेद को महत्त्वपूर्ण चुनौती मिली, और अंतरंग प्रेम और इच्छाओं को भी एक भंजनकारी स्थल मिला। यहाँ पुरुष और स्त्री के बीच के संबंधों को पुनर्गठित करने का भी एक उत्कट आग्रह था। जाति और सेक्स से संबंधित उनका लेखन लैंगिक संबंधों और सेक्स आनंद को पुनर्भाषित करता है और एक बेहतर लैंगिक जीवन जीने की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष : साधो संत बौराना

संतराम की आत्मकथा और अन्य रचनाएँ केवल साहित्य के गहने नहीं हैं, वे संचार और संवाद के ऐसे उपक्रम हैं जिससे वे अपने जाति-विरोधी रूपक, संहिताएँ और व्यवहार विकसित करते हैं। संतराम की सक्रियता से भरपूर *मेरे जीवन के अनुभव* केवल एक व्यक्तित्व तक सीमित नहीं है बल्कि इसके तहत एक युग की जाति संबंधी विविध, बेचैन, पीड़ाजनक प्रवृत्तियाँ निहित हैं। उनका जीवन और लेखन एक विशेष संदर्भ में जाति-विरोधी विचारों का एक अभिलेखागार है और वह आधुनिक भारत में जाति के सामाजिक इतिहास का एक जीवंत स्थल और संग्राहक बन जाता है। यह संतराम के निजी

---

[143] जिज्ञासु (1998) : 53.
[144] संतराम (1963) : 161-2.

जीवन और सार्वजनिक प्रतिबद्धताओं की एक बेहद समृद्ध बानगी पेश करता है, जबकि उनके जाति-विरोधी संकल्प एक संकरित, उदारतावादी ज़मीन तैयार करने की कोशिश करते हैं। वे गाँधी और आम्बेडकर, आर्य समाज और आदधर्म के बीच भटकते दिखते हैं और इस भटकन में कई दरारें देखी जा सकती हैं। उनके जीवन-विवरण में व्यक्तिगत-निजी जीवन और सामूहिक-सार्वजनिक इतिहास साथ-साथ बसते हैं क्योंकि वे दोनों ही जाति-चिह्नित हैं। संतराम के जीवन और लेखन को किसी सीधे साँचे में नहीं रखा जा सकता है क्योंकि इसमें कई अनिश्चितताएँ हैं जो एक ओर जाति से मुक्त होने की गहरी इच्छा रखती हैं, तो दूसरी ओर अपना दामन हिंदूवाद से भी जोड़े रखती हैं। वे सेकुलर-पावन, भक्ति-आधुनिकता विमर्श के द्विभाजनों के बीच डोलते रहते हैं और जाति के विरोध के लिए सामाजिक और आध्यात्मिक को एक साथ साधने की कोशिश करते हैं। इस सब में विविध और जटिल व्यक्ति सापेक्षता के तत्त्व निहित हैं जो प्राय: एक दूसरे से असंगत रहते हैं। आर्य समाज से गहरे विक्षोभ के बावजूद उन्होंने आर्य समाज और जाति विरोधी विचारों को एक साथ लाने की कोशिश की। संतराम ने मुख्यत: शहरी, शिक्षित, उच्च जाति के ज़रिये समाज सुधार लाने की कोशिश की और इस प्रक्रिया में हिंदूवाद को कुशाग्रता से पुनर्गठित और पुनर्स्थापित किया। इसके साथ ही संतराम ने जाति के बारे में विवादपूर्ण, तीखे विमर्श से लगातार सामंजस्य क़ायम करने की कोशिश की जिसने उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को प्रभावित किया। इस सारे उपक्रम का उद्देश्य था जाति के वर्चस्वशाली अभिलेखों का अतिक्रमण करना।

संतराम का लेखन जाति पर एक वैकल्पिक अभिलेखागार निर्मित करने में योगदान करता है क्योंकि वे चुनिंदा तौर पर आर्य समाज, आम्बेडकर और अंतर्जातीय विवाह की भाषा अख़्तियार करते हैं। संतराम के जीवन-विवरणों में जाति और सेक्स के बेबाक़ इतिहास की झलक देखी जा सकती है। उनकी भाषाई अभिव्यक्तियाँ प्राय: विभिन्न संदर्भों वाले वैकल्पिक अभिलेखागार से सृजित होती थीं जो अन्य वर्चस्वशाली लेखों से संवाद करते हुए एक संकरित-उदारतावादी विमर्श के ज़रिये जातिवाद के विरोध का इतिहास प्रस्तुत करती है। इन निर्मितियों के कारण उनका जीवन जाति के प्रतिवाद की स्वाधीनताकामी गतिविधियों और अन्य हस्तक्षेपकारी कार्यवाहियों के लिए तैयार रहता था। शायद यही कारण है कि संतराम को दलित लेखकों और बुद्धिजीवियों ने कहीं ज़्यादा स्वीकार किया है, और आर्य समाज ने उन्हें हाशिये पर रखा है।

एक ही समय में शूद्र और दलित, आर्य समाज के अंदरूनी सदस्य और बाहरी प्रेक्षक के रूप में उनकी दुहरी पहचान संतराम के जीवन को एक रैडिकल धार देती है। फुले, पेरियार और आम्बेडकर के समान ही सगोत्रीय विवाह पर उनकी कड़ी आलोचना जाति-विरोधी विचार और लिंग के बीच एक मिलन बिंदु बनाती हैं जिससे लैंगिक नियंत्रण और जाति के पुनर्जीवन के अंतर्संबंध प्रश्नांकित होते हैं। अंतर्जातीय विवाह के बारे में संतराम के विद्वत्तापूर्ण विचारों से जाति-लिंग की भौतिक, दैहिक जंजीरों को तोड़ने और अंतरंगता के नये रास्ते खोलने में मदद मिलती है। सेक्स-विज्ञान के साथ अंतर्जातीय गठबंधनों को जोड़ कर संतराम ने न केवल जाति को और तरल बनाया बल्कि अंतरंग रिश्तों को एक नया स्थल दिया जिसने उस समय की द्वंद्वपूर्ण इच्छाओं को एक शक्ल देने में अहम योगदान किया। संतराम का वैविध्यपूर्ण लेखन औपनिवेशिक भारत में जारी उथल-पुथल के बिम्ब, तत्कालीन सामाजिक स्थितियों और जाति एवं लिंग के बदलते संबंधों के एक मापक के रूप में देखा जा सकता है। यह बेहद महत्त्वपूर्ण है कि हम इस आधे-अधूरे और एक तरह से भुला दिये गये समाज सुधारक की सीमांत ज़िंदगी की एक बार फिर पुनर्रचना करें क्योंकि यह एक ऐसा व्यक्तित्व है जिसकी रैडिकल सम्भावनाएँ हमें बार-बार आकर्षित करती हैं।

संदर्भ

अनुपमा राव (2009), द *कास्ट क्वेश्चन : दलित्स ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

आर.के. क्षीरसागर (1994), *दलित मूवमेंट इन इण्डिया ऐंड इट्स लीडर्स (1857–1956),* एम.डी. पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

ऑग्ज़िलिअरी कमेटी ऑफ़ द इण्डियन स्टेच्युटेरी कमीशन (1930), *रिव्यू ऑफ़ ग्रोथ ऑफ़ एजुकेशन इन ब्रिटिश इण्डिया,* गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया प्रेस, दिल्ली.

इशिता बनर्जी–दुबे (सं.) (2010), 'इंट्रोडक्शन : क्वेश्चंस ऑफ़ कास्ट', *कास्ट इन हिस्ट्री,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली.

उदय कुमार (2016), *राइटिंग द फ़र्स्ट पर्सन : लिटरेचर, हिस्ट्री ऐंड ऑटोबायोग्राफ़ी इन मॉडर्न केरला,* परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

उलरिक स्टार्क (2007), *एन एम्पायर ऑफ़ बुक्स : द नवल किशोर प्रेस ऐंड द डिफ़्यूज़न ऑफ़ द प्रिंटेड वर्ड इन कॉलोनियल इण्डिया,* परमानेंट ब्लैक, नयी दिल्ली.

एच.ए. रोज़ (सं.) (1911), *अ ग्लोसरी ऑफ़ द ट्राइब्स ऐंड कास्ट्स ऑफ़ द पंजाब ऐंड नार्थ–वेस्ट प्रोविंस, खण्ड 2,* सिविल ऐंड मिलिट्री गज़ट प्रेस, लाहौर.

सुब्रह्मण्यम शंकर (2012), *फ़्लेश ऐंड फ़िश ब्लड : पोस्टकोलोनियलिज़्म, ट्रांसलेशन ऐंड द वर्नाकुलर,* ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद.

एस.डब्ल्यू. फ़ैलन (1991), *हिंदुस्तानी–इंग्लिश डिक्शनरी ऑफ़ ईडियम्स ऐंड प्रोवर्ब्स,* स्टार पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली (मूल संस्करण 1886 में प्रकाशित).

एम.एस.एस. पाण्डियन (2008), 'राइटिंग ऑर्डिनरी लाईव्ज़', *इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली,* 43 (38), 20 सितम्बर.

कंवल भारती (2017), 'संतराम बीए : एक प्रतिबद्ध जाति तोड़क', *फ़ॉरवर्ड प्रेस,* 26 जुलाई. https://www.forward-press.in/2017/07/santram-b-a-a-committed-anti-caste-warrior-hindi/

'कास्ट ऐंड द सेंसस' (1931), *इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर,* 61(25), 21 फ़रवरी.

कांचा इलैया (2002), *व्हाई आई एम नॉट अ हिंदू : अ शूद्रा क्रिटीक ऑफ़ हिंदुत्व फ़िलोसॅफ़ी, कल्चर ऐंड पॉलिटिकल इकॉनॉमी,* साम्या, कलकत्ता.

के. सत्यनारायण और सूज़ी थारू (सं.)(2011), *नो अल्फ़ाबेट इन साइट : न्यू दलित राइटिंग फ़्रॉम साउथ इण्डिया : तमिल ऐंड मलयालम,* पेंगुइन, नयी दिल्ली.

------------------------(2013), *स्टील निब्स आर स्प्राउटिंग : न्यू दलित राइटिंग फ़्रॉम साउथ इण्डिया : कन्नड़ ऐंड तेलुगु,* हार्पर कोलिंस, नयी दिल्ली.

केनेथ जोंस (2006), *आर्य धर्म : हिंदू कांशसनेस इन नाइंटींथ सेंचुरी पंजाब,* मनोहर, नयी दिल्ली. (मूल संस्करण 1976 में प्रकाशित).

गज़ट ऑफ़ द होशियारपुर डिस्ट्रिक्ट, 1883–4,(1885), सिविल ऐंड मिलिट्री गज़ट प्रेस, लाहौर.

गार्गी चड्ढा (1988), 'उनकी यादें और छोटी–छोटी बातें', *विश्वज्योति* (*श्री संतराम बीए स्मृति–अंक*), सितम्बर.

जॉक रांसिएर (2011), द *पॉलिटिक्स ऑफ़ लिटरेचर,* अनु. जूली रोज़, पॉलिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

डेविड आर्नोल्ड और स्टुअर्ट ब्लैकबर्न (2004), 'इंट्रोडक्शन : लाइफ़ हिस्टरीज़ इन इण्डिया', डेविड आर्नोल्ड और स्टुअर्ट ब्लैकबर्न (सं.), *टेलिंग लाइव्ज़ इन इण्डिया : बायोग्राफ़ी, ऑटोबायोग्राफ़ी ऐंड लाइफ़ हिस्ट्री,* इण्डियाना युनिवर्सिटी प्रेस, ब्लूमिंगटन.

तोरल जतिन गजरावाला (2013), *अनटचेबल फ़िक्शंस : लिटरेरी रियलिज़्म ऐंड द क्राइसिस ऑफ़ कास्ट,* फोर्डहम युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयॉर्क.

देबजानी गांगुली (2009), 'पेन, पर्सनहुड ऐंड द कलेक्टिव : दलित लाइफ़ नैरेटिव्ज़', *एशिया स्टडीज़ रिव्यू,* 33 (4), दिसम्बर.

धर्मवीर (2008), 'संतराम बीए : ग़ैरों के बीच', *दलित चिंतन का विकास : अभिशप्त चिंतन से इतिहास चिंतन की ओर,* वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

नये वर्ष का सूचीपत्र, राजपाल ऐंड संस, लाहौर. कोई तारीख़ नहीं.

निकोलस डर्क्स (2001), *कास्ट्स ऑफ़ माइंड : कोलोनियलिज़्म ऐंड द मेकिंग ऑफ़ मॉडर्न इण्डिया,* प्रिंसटन युनिवर्सिटी प्रेस, प्रिंसटन.

पॉल गिलरॉय (1993), द *ब्लैक अटलांटिक : मॉडर्निटी ऐंड डबल कांशसनेस,* वर्सो, लंदन.

फाइल 2, 'व्यक्तिगत संग्रह : संतराम बीए के दस्तावेज़ों का संकलन', सूची 430, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नयी दिल्ली.

फिलिप कोन्स्टेबल (2000), 'सिटिंग ऑन द वरानडाह : द आइडियोलॅजी ऐंड प्रैक्टिस ऑफ़ 'अनटचेबल' एजुकेशनल प्रोटेस्ट इन लेट नाइंटींथ सेंचुरी वेस्टर्न इण्डिया', *द इण्डियन इकॉनॉमिक ऐंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू*, 37(4).

बी.आर. आम्बेडकर (1935), 'रिलीजस नोशंस ऑन विच कास्ट सिस्टम इज़ बेस्ड शुड बी डेस्ट्रोय्ड', *ट्रिब्युन*, 11 दिसंबर.

------------(1936), *एनिहेलेशन ऑफ़ कास्ट*, 15 मई 1936 : प्रस्तावना.

मदन गोपाल (1987), 'अ हंड्रेड इयर्स ऑफ़ राइटिंग', *टाइम्स ऑफ़ इण्डिया*, 16 फ़रवरी.

मार्क जुर्गेस्मेयर (2009), *रिलीजियस रेबेल्स इन द पंजाब : द आदधर्म चैलेंज टू कास्ट*, नवायन, नयी दिल्ली (मूल संस्करण 1982 में प्रकाशित).

मिशेल फ़ूको (1978), द *हिस्ट्री ऑफ़ सेक्शुअलिटी : 1*, (अनु.) रॉबर्ट हर्ली, विंटेज, न्युयॉर्क.

मैनुएला सियाटी (2006), 'इन द पास्ट वी वर अ बिट ऑफ़ 'चमार': एजुकेशन एज़ अ सेल्फ़ ऐंड कम्युनिटी इंजीनियरिंग प्रोसेस इन नॉर्थन इण्डिया', *जर्नल ऑफ़ द रॉयल ऐंथ्रोपॉलॅजिकल इंस्टीट्यूट*, 12 (1), दिसम्बर.

मोहनदास नैमिशराय (2006), *हिंदी दलित साहित्य*, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली.

रिचर्ड एम. ईटन (2005), *अ सोशल हिस्ट्री ऑफ़ द डेक्कन, 1300-1761 : ऐट इण्डियन लाईव्ज़*, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

राज कुमार (2010), *दलित पर्सनल नैरेटिव्ज़ : रीडिंग कास्ट, नेशन ऐंड आइडेंटिटी*, ओरिएंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद.

राजेंद्र जिज्ञासु (1998), *धर्म की बलिवेदी पर : महाशय राजपाल जी की बलिदान गाथा*, राजपाल ऐंड संस, दिल्ली.

रामनारायण टंडन (1951)(सं.), *हिंदी सेवी संसार, भाग 1*, तीसरा सं., लखनऊ.

रामनारायण रावत (2012), *रिकंसिडरिंग अनटचेबिलिटी : चमार्स ऐंड दलित हिस्ट्री इन नार्थ इण्डिया*, परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.

रोंकी राम (2004), 'अनटचेबिलिटी, दलित कांशसनेस, ऐंड द आद धर्म मूवमेंट इन पंजाब', *कंट्रीब्यूशंस टू इण्डियन सोसियोलॅजी*, 38 (3).

लता मुरुगकर (1991), *दलित पैंथर मूवमेंट इन महाराष्ट्र : अ सोसियोलॉजिकल अप्रेज़ल*, पॉपुलर प्रकाशन, बॉम्बे.

'लीग टू अबोलिश कास्ट सिस्टम' (1923), *इण्डियन सोशल रिफ़ॉर्मर*, 33 (20), 13 जनवरी.

लौरा ब्रुएक (2014), *राइटिंग रेज़िस्टेंस : द रेटरिकल इमेजिनेशन ऑफ़ हिंदी लिटरेचर*, कोलम्बिया युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयॉर्क.

शर्मिला रेगे (2011), *राइटिंग कास्ट/राइटिंग जेण्डर : रीडिंग दलित वुमंस टेस्टिमॅनीज़*, जुबान, नयी दिल्ली.

-------(2013), *अगेंस्ट द मैडनेस ऑफ़ मनु : बी.आर. आम्बेडकर्स राईटिंग्स ऑन ब्राह्मनिकल पेट्रिआर्की*, नवयान, दिल्ली.

शैलजा पायक (2011), 'महार-दलित-बुद्धिस्ट : द हिस्ट्री ऐंड पॉलिटिक्स ऑफ़ नेमिंग इन महाराष्ट्र', *कंट्रीब्यूशंस टू इण्डियन सोसियोलॅजी*, 45 (2).

सतनाम सिंह (2008), *संतराम बीए कृत मेरे जीवन के अनुभव : दलित साहित्य की पहली स्व-जीवनी*, सम्यक प्रकाशन, नयी दिल्ली.

सरह बेथ हंट (2014), *हिंदी लिट्रेचर ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ रिप्रज़ेंटेशन*, रूटलेज, नयी दिल्ली.

संजय पासवान और परमांशी जयदेव (2004), *इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ दलित्स इन इण्डिया : लीडर्स (खण्ड 4)*, कल्पाज़ पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.

संतराम बीए (अनु.) (1917), *एकाग्रता और दिव्य शक्ति*, उदयलाल काशीलीवाल, बम्बई [हशनु ओ. हारा (1906), कंसंट्रेशन ऐंड द एक्वायरमेंट ऑफ़ पर्सनल मैगनेटिज़्म].

--------(अनु.)(1918, 1920, 1928), *अलबरूनी का भारत*, इण्डियन प्रेस, लिमिटेड, इलाहाबाद. इसे 1994 में दो हिस्सों में दोबारा प्रकाशित किया गया. संतराम बीए (अनु.), *अल-बरूनी वर्णित भारत, 2 खण्ड*, पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर.

--------(1923), 'लीग टू अबोलिश कास्ट सिस्टम', *इण्डियन सोशल रिफॉर्मर*, 33 (20), जनवरी 13.

---- ---(1923), 'संस्कृत साहित्य में काम-शास्त्र का स्थान', *माधुरी*, वर्ष 2, खण्ड 2, संख्या 6.

---- ---(1924), *आदर्श पत्नी*, राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर.

---- ---(1924), 'रति-रहस्य', *माधुरी*, वर्ष 3, खण्ड 1, संख्या 5, दिसम्बर.

-------(अनु.)(1925), *इत्सिंग की भारत यात्रा*, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद.

---- -- (अनु.)(1925), *विवाहित प्रेम,* राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर.

-------(अनु.)(1925), *मानव जीवन का विधान,* इण्डियन प्रेस, प्रयाग. [रॉबर्ट डोड्स्ले (1939)], *द इकॉनॉमी ऑफ़ ह्यूमन लाइफ़*].

-------(अनु.)(1925), *कर्मयोग,* गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ. [हशनु ओ. हारा (1909), *प्रैक्टिकल योगा*].

-------(अनु.)(1928), *भारत में बाइबल,* दुलारेलाल भार्गव, लखनऊ. [लुई जैकोलिओट्स (1870), *बाइबिल इन इण्डिया*].

------- (1929), 'अंतर्जातीय विवाह', *सुधा,* वर्ष 2, खण्ड 2, संख्या 6, जुलाई.

------- (1929), *काम-कुञ्ज,* नवल किशोर प्रेस, लखनऊ.

------- (1931),'कास्ट ऐंड द सेंसस', *इण्डियन सोशल रिफॉर्मर,* 61 (25), फ़रवरी 21.

------- (अनु.)(1931), *रति विलास,* राजपाल, सरस्वती आश्रम, लाहौर.

------- (1932), *आदर्श पति,* द्वितीय संस्करण, राजपाल ऐंड संस, लाहौर.

------- (1936), *हरिजन,* 15 अगस्त.

------- (1936), 'हिंदू रेसेज़ ऐंड द कास्ट', *ट्रिब्युन,* 28 फ़रवरी.

-------(1949), *हमारा समाज,* नालंदा प्रकाशन, बम्बई.

------ (1950), *रति-विज्ञान,* द्वितीय संस्करण, भारतवर्ष प्रकाशन, बम्बई.

------ (1952), 'टॉन्टिड ऐंड स्कोल्ड बाय ओर्थोडॉक्सी : ऐंटी-कास्ट मूवमेंट इन द पंजाब : एक्सपीरिऐंसेज़ ऑफ़ अ सोशल रिफ़ॉर्मर', *द संडे आब्जर्वर,* 13 जुलाई.

-------(अनु.)(1959), *लोक व्यवहार, अर्थात् मित्र बनाने और जनता को प्रभावित करने की विधियाँ,* चौथा (सं.), डी.बी. तारापोरवाला, बम्बई. [डेल कार्नेगी (1936), *हाउ टू विन फ्रेंड्स ऐंड इन्फ़्लुएंस पीपुल*].

-------- (1963), *मेरे जीवन के अनुभव,* हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी.

-------- (2007), *हमारा समाज,* शांति स्वरूप बौद्ध द्वारा प्रकाशकीय, तृतीय (सं.), सम्यक प्रकाशन, नयी दिल्ली.

संतराम का श्याम लाल मनचंदा से साक्षात्कार, 15 जुलाई 1971, मौखिक इतिहास प्रतिलेख, संख्या 238, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, दिल्ली.

संतराम द्वारा मैरी स्टॉप्स को लिखा एक ख़त, तारीख़ 16 मार्च 1930, एम.एस.एस. संख्या 58578, स्टॉप्स पेपर्स, पाण्डुलिपि विभाग, ब्रिटिश पुस्तकालय, लंदन.

सी.एस. ऐडकोक (2014), *द लिमिट्स ऑफ़ टॉलरेंस : इण्डियन सेकुलरिज़्म ऐंड द पॉलिटिक्स ऑफ़ रिलीजिस फ्रीडम,* ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्युयॉर्क.

सूज़न बेली (1999), *कास्ट, सोसाइटी ऐंड पॉलिटिक्स इन इण्डिया : फ्रॉम द ऐटींथ सेंचुरी टू द मॉडर्न एज़,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.

सुधीर विद्यार्थी (1985), 'जात-पात के ख़िलाफ़ संतराम बीए का जेहाद ख़त्म नहीं हुआ', *विश्वज्योति* (जात पाँत-तोड़क अंक 2), जून-जुलाई.

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'(1929), 'वर्णाश्रम-धर्म की वर्तमान स्थिति', *माधुरी,* वर्ष 8, खण्ड 1, संख्या 5.

सेंसस ऑफ़ इण्डिया, 1911, *खण्ड 1, भाग-1* (1912), सुपरिंटेंडेंट ऑफ़ गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता.

सेंसस ऑफ़ इण्डिया, 1921, खण्ड 15, पंजाब और दिल्ली, भाग I (1922), सुपरिंटेंडेंट ऑफ़ गवर्नमेंट प्रिंटिंग, कलकत्ता.

सेंसस ऑफ़ इण्डिया, 1931, *खण्ड XVII, पंजाब, भाग I,* रिपोर्ट (1933), ख़ान अहमद हसन ख़ान, सिविल ऐंड मिलिट्री गज़ट प्रेस, लाहौर.

हिंदू, 6 अक्टूबर 1943.

हिंदू महासभा के दस्तावेज़, एम-3, नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, दिल्ली.

ज्ञानेंद्र पाण्डे (2013), *अ हिस्ट्री ऑफ़ प्रेजुडिस : रेस, कास्ट, ऐंड डिफ़रेंस इन इण्डिया ऐंड द युनाइटेड स्टेट्स,* केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस, केम्ब्रिज.